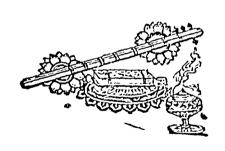
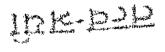
क्रमांक विषय १६ देशावकाशिक व्रत पृष्ठां ह १७ पौपधोपवास त्रत १८ देश पोपध १४६ १६ पोषध में सामायिक करना या नहीं 222 २० पौषध में लगने वाले दीप १५७ २१ अतिथिसंविमाग व्रत 346 २२ उपासक प्रतिमा १५९ २३ विशुद्ध प्रत्याख्यान १६२ २४ श्रावक के मनोरथ १६९ २५ शावक के विश्राम १७४ २६ जैनधर्म का आस्तिकवाद १७६ २७ ब्रात्मा का ब्रस्तित्व १७८ २८ श्रात्मा गाग्वत है 260 २९ जीव कर्म का कत्ती है १८२ ३० जीव कमंफल का भीक्ता है १८५ रे १ मुक्ति है १९३ ३२ यास्तिकता के विषय 200 १३ मुनित का उपाय है 355 ३४ अनेकांत वाव 799 निद्येष स्वरूप 865 ३४ नय स्वरूप २३६ 740

ः मां	क विभ	95318
	 नियतिष्यको अदन नियात	194
	प्रधानमन्त्री भोग विषयाना का विवादन विवय	143
	महाराज का निर्णय	101
	अपने चिनाव	103
•	भनन्तानुबन्धी कवाय स्वस्त्व	108
	रपुनाय पटेल की छाछ	154
	भगवान् का लोकोत्तर जीवन	इटप
	ंभः महायोर का बीतरागी व्यक्तितः। 🚎 👵 🧷	. 385
	! मूत्रकार स्तुति अल्ला किला	



勒克 翻译 艾杰 花 经打断 对诗歌



विन्यकासक है को है कि का तथी के अन अपने कि हैं।

ैबेन-रभन मधार में तो तथा भागा है, एवं । इस्तापो भाद करों मारे तो तथा ठा भागता जातम् । १६ मृत्र भोर धमें का भागता को भागशकता तो एस है ? लो ऐसा नहीं सावना जातिए। तो तथा का उस्ताटक हैं — विशे अमो के प्रथम वस्ता — शहिही देता। उस्तुत सभा का का भाग देवतस्य हो है। देवन्त्य में ही मभावन संकाय का स्वाहुं ॥

िसने बताये जीन-अजीन ? कई मन न तो जी निर्मामतत हैं, न अजीव तत्व के धर्मास्त अधर्मीस्त अधिक मिले हैं। बच्च का स्वस्त्र पृष्य-पाप आदि तत्वों का स्वतन्त्र पृष्य विषयुद्ध स्वस्त्र वताने वाले हैं कीन ? कहना होगा कि एकि हुए के जो समस्त तत्त्वों को प्रकाणित करते हैं। तत्वों का तथ्यात्म कि स्वस्त्र वे ही बता सकते हैं, जिनके राग-द्वेप समूल नाट होगए हों, और केवलज्ञान-केवलदर्शन प्राप्त कर सर्वज्ञ-सर्वदर्शी बन गए हों। ऐसे परम श्रेष्ठ विषयोत्तम परमात्मा ही तत्त्वों का प्रकाण कर सकते हैं। उनके प्रति श्रद्धा हो, तभी उनके उपविषयोत्तम नरमात्मा ही तत्त्वों का प्रकाण कर सकते हैं। उनके प्रति श्रद्धा हो, तभी उनके उपविषयोत्तम नरमात्मा ही तत्त्वों का प्रकाण कर सकते हैं। उनके प्रति श्रद्धा हो, तभी उनके उपविषयोत्तम नर्ही, तभी तत्त्व का मूल्य ही वया रहे ?

कोई सोना चौदी एवं रत्नादि बहुमूल्य वस्तु खरीदना चाहे, तो विश्वसनीय जीहरी के पास जाता है। वह दूसरों से पूछता है कि——"ऐसा विश्वसनीय जीहरी कीन है कि जिससे

जिसमें सम्यक्तान ही नहीं, उसका तो कहना ही क्या है ! अन्य मत के उपास्य देवों में सम्यक्तान होता ही नहीं। अतएव उनका कथन सत्य नहीं ही सकता। तात्विक विषयीं में तो वे अज्ञानी होते ही हैं। जहाँ अज्ञान का दीप है, वह अन्य दोपों का सन्द्राव भी होता ही है।

जिनेश्वर भगवन्त ने यपनी पवित्र साधना से, तात्मा के पूर्ण ज्ञान को यवरुद्ध करने वाले समस्त यावरणों की नष्ट करके सर्वज्ञ-सर्वदिशिता प्राप्त कर ली। उनसे संगार की कोई भी वस्तु लिपी नहीं रही—चाह स्यूल हो या मूक्ष्म, वर्तमान की हो या भून-भविष्य काल की। वस्तु का अत्यन्त गुष्त सूक्ष्मतम यंग भी भगवान से लुपा नहीं रहा। इसका प्रमाण हमारे सामने है।

जिनेस्वर भगवन्त ने वाणी से बोले जाने बाले शब्द की ह्वी एवं प्रहण होने सोग्य बतलाया है। शब्द को वर्ण, गन्ध, रस स्रोर स्पर्शमुक्त होने तथा बजाकार स्राकृति होना, मिवास जिनेस्वर भगवन्तों के और किसने बताई ? एकमान्न जिनेस्वर भगवन्त ही ऐसे हैं जिन्होंने भाषा को पुद्गलम्स वर्णगन्धादि युवन और निकलते ही लोकान्त तक पहुँचने वाली बनलाया है। जापा के पुद्गल अनन्त-न्नदेशी (सनन्न परमाणुत्रों ने युवन) और समंद्य नमय की स्थिति बाले बनलाये हैं। यह जी बताया है कि भाषा के पुद्गल मेंह से निकलने के बाद बहने-बहने अनन्त गुण वृद्धि पति हुए लोकान्त तक पहुँचने हैं। (प्रजापना सुध पद ११)

ज्ञान-गुण सम्पन्न हैं। उनमें प्रज्ञान का रंच मात्र भी दं प नहीं होता। जो पूर्ण ज्ञानी होता है, वही सच्चा तत्त्व-प्रकाशक हो सकता है। श्रन्य तत्त्वनिक्ष्पकों के कथन में असत्य का अंश होना सर्वथा सम्भव है। श्रतएव ग्राराध्य देव वही ही सकता है कि जिसमें अज्ञान-दोप का लेणमात्र भी नही हो। जिनेशवर भगवन्त पूर्णज्ञानी थे। उनमें श्रज्ञान-दोप था ही नहीं। वे सर्वथा निर्दोष थे।

२ मिथ्यात्व दोष-जान के अभाव में मिथ्यात्व तो होता ही है। जहां तत्त्वों का सम्यग्ज्ञान नहीं, वहां सम्यग्-दर्शन भी नहीं होता । मिथ्यात्व ही के प्रभाव से जीव पाप की पुण्य श्रोर पुण्य को पाप, अधमें को धर्म श्रोर धर्म को अधर्म मानता है। स्थावरकाय जीवीं को अजीव ग्रीर अजीव की चीव, आस्रव की संवर और संवर की ग्रासव, वन्ध की निर्जरा ग्रोर निर्जरा को बन्ध, तथा मुक्ति को संसार ग्रोर संसार को मुनित मानता है। निर्दीप संयम-तप की साधना की 'जड़िकया ' और साधक को 'कियाजड़ ' कहता है। मिथ्यात्य ऐसा विष है, जिससे ब्रातमा के ज्ञान-दर्शनादि गुण विकृत हो जाते हैं। जिस प्रकार कांस्य-पात्र में रखा तुआ दही विपैला हो जाता है, ताम्र-पात्र में रहा हुआ दूध-दही ग्रीर घृत स्वास्थ्य के लिये हानिकारक है, इसी प्रकार जहाँ मिथ्यात्व है, वहाँ सामान्य ज्ञान भी नहीं रहता, तब धर्म-प्रकाशक देवत्व तो रहें हो केंसे ? प्रन्य देवों में मिथ्यात्व का सन्द्राव बताने वाले

किर पर हैंग्स कुलीश्रेष के स्वेष्ट्र के ब्राह्म क्रिक करें 新山 教 本成本 化基础 多种种 多种种 多种种种 集 和的经 華 養華 海北县上海 海水 御 和水如果 · ·

幸 海绵野蜂 省海 ~ 發水湯 一班市 中華 新城市 雷斯林 黎生 激素藥 不勸 化油 经水 经成份额 具压剂 音串 共作效果 京都海 衛 銀甲基甲 电影 额 縣 野 雪田 电声电影 事業 新岭 寄磨 翻翻绘 ễ 千本瓜 复音 極性 岛鱼侧斑蛇 慰答羹(狐蠹 我答案 歌歌中 歌声 中野地 如此中 養 新神化學 養養 鼻、喉咙、皮肤、寒肿、皮肤、皮肤、皮肤、皮肤、腹肿、腹肿、腹肿、 不能够 安徽市 医动物性 电电影 蒙 歌游 饕 which is talk out to the state while also talk the THE SHAPE WE SHAPE WHITE AND HELD THE WAY 東京教育工作、養 野海 1600年 大田市 對係 编 有印度体 第 得身 女孩 奉 安排 -

THE THE PARTY SHEET A WORLD SHE 弹性物 歌海 鹤车 鹳 南麻椒 筝、星鹤楼哦 黄、黄雉 杯塘树 पूर्व ही उस पवित्र आतमा में में काम िकार का बीजांग-वेदोदय—समाप्त हो जाता है। अतएव भगवान् में काम दी भी नहीं होता। वे पूर्णतया निष्काम होते हैं।

प्हास्य दोष—जिनेश्वर भगवंत में हास्य है
नहीं होता। मनुष्य हँसता है— मोहनीय फ्रीर ज्ञानावरण कर्म के उदय से। कोई ऐसी वात देखने-मुनने या जान क्षि को तत्काल हँसी उत्पन्न कर दे। जिसे सुन कर उमनुष्य के मन में भी हँसी उत्पन्न हो जाय। यह वात या ता पहले उसके जानने में नहीं आई हो। यदि पहले सुनी देखी हीं, तो भी विस्मरण हो गया हो, और हँसी उमाइने के कलापूर्ण हंग से प्रस्तुत हुई हो, तो हँसी ग्राना स्वभाविक है। मोहनीय कर्म की ग्रठाईस प्रकृतियों में से हास्य भी एक प्रकृति है। परम् वीतराग सर्वज्ञ-सवदर्शी को हँसी आती हो नहीं। वे भूत औ भविष्य के सम्पूर्ण ज्ञाता होते हैं। उनसे कोई भी रहस्य छिष् नहीं है। अतएव उनको हैसी आने का कोई कारण भी नहीं है। जो हँसता है, वह मोही है ग्रीर छद्यस्य है। जिनेतर के में यह दोप उनके चरित्र से स्पट्ट होता है। किन्तु जिनेश भगवंत इस दोप से सर्वथा मुक्त हैं।

६ रित दोप—मनानुकूल विषयों के प्राप्त हैं पर प्रसन्न होना, मुखानुभव करना, इच्छित वस्तु की प्रा पर तुष्ट होना। भनतों द्वारा प्राप्त पूजा-सत्कार से संत् होना। शब्दादि मौतिक मुखद विषयों में ग्रासन्ति-ग्रनुर

\$6.500 \$1500 \$1500 \$1500 \$1500 \$1500 \$1500 \$1500 \$1500 \$1500 \$1500 \$1500 \$1500 \$1500 \$1500 \$1500 \$1500 \$1500 \$1 化氯酚酚 夢 布沙安 歌遊 簟。 老老或粉碎, 故疏醉者 盖脏 散进 旁

李 陳起春 數據一一時年前年 化硫酸 女子母 東鄉 華 计电影性 化糖子原理 童 新 女性的 養女 被影響時期 化 经收益者 國際歌 學其後華 衛北市 衛行者 等待 都是教教 衛打衛星 春息 春息

也 被辩禁 医阴茎切断性的 经股票 医皮肤炎 海绵 电影图象 医肠 我看法 不知 去本 女女 故自 人 经城 看 安慰年 原節 海海越县 韓 韓 海 海 美, 如清 勃勃 雷德德 計學學 衛 横著 新鄉 數語 鱼 静脉的 医二甲酰胺胺 垂鶴鄉母春葵 初時、

中納 京松州 養 賞

李武學學 衛星 一大學的 懿 本理》 多种的 一部的 题 斯中 聖禮 歌江 歌声 本城 野田 新

安全的 计数 本衛 苏南部 综 不可致 心脏体 电极电 海翻線 景 引诱 對降 黄海 寿 新林 · 拉

海市 學家心理教育學學 遊戲 野 新维 新维 医神经毒素 · 養 新加納 衛海 繁华 安东 · 东

联转指 封台和後州海鄉 海绵 经受透 胸 溶黄 联锁甲

होना अथवा प्रकारण हो भयप्रव विचार उत्पन्न होना ¹³¹

आर्जाविका भये—-जीतिका के साधन विस⁶² ही^{ति।} भय । ग्रयना वेदना भये—-रोग से उत्पन्न दुःस । इसके ^{ग्री} कार के लिए इन्जेक्शन आपरेशन आदि से भयभीत होता ^{है}

अयश भय--अपयश, बदनामी, प्रसिष्ठा में होते वार हानि का भय ।६।

मृत्यु भय--मरने का उर 1७1

भयभीत होने वाली आतमा अगमत होती है। उन् मन में धन, कुटुम्ब, शरीर ख्रादि के प्रति मोह होता है। इस् जनकी अरक्षा का डर बना रहता है। अन्य देवों के हाथे शस्त्र होने का कारण भय ही है। श्रीजिनेश्वर भगवंत र प्रकार के भय से रहित—निर्मय होते हैं।

१० जुगुरसा दोय—बीभरस्य दृश्यों, विक दुगंन्धी वस्तुओं, कर्णकट् शब्दों, स्वादहीन असवा अग्निय र बाले खान-पान, असह्य स्पर्शादि से घृणा होना। अन्य देव दोष से मुक्त नहीं थे। जिनेश्वर भगवंत में यह दोष भी होता।

१२ राग वोष—प्रिय वस्तु पर राग—स्नेह हे भनतों पर अनुराग कर के उन्हें वरदान देना, अनका इि कार्य करना आदि राग-दोष है। कोध स्नोर मान कषाय, के अन्तर्गत है। जिनेश्वर भगवंत इस राग—स्नेह—प्रेम से सर्वथा बंचित हैं।

WH! 野海灣 矫好 生营 中田 自然 甘油 等 中国的城市 至 电动的 書 dian's 趣 聽 嗷 我就要我们的 都的 真。 相连 紹 如此 既然 i ĝi 聖 的語 电电路 电性照明器 海 中段 沿 不管 衛 电电 The state of 渐液面 軟裝塵 夾 紅微 產子 建氯磺胺 歌诗声 恋 褟 刪 难撰解 野鸡用鱼 歌母 野日 新新城市社 彩 田華 海南北 歌詞語 4 重如 如果 軟塊 專受 時籍 뭐 如斯斯伯斯斯市 *** S. S. 職無者 鄉縣 東梅島 三華縣多 和縣 多水 翻翻 斯斯 多水 翻 * 轉 经定费 脂体 如常中 婚妻 经济 电影电话 動類 震力計 轉 कर मनुष्य दूसरे शितशाली से उरता है और उससे गुरित के रहने के लिये विविध प्रकार के शस्त्र धारण भरता है। उ^{त्र शि} वा सब भी होते हैं, जिन्हें वे गारते हैं। यह स्थित भीतिक-लगि के कारण होती है। पुद्गलानन्दीपन के कारण ऐसी स्थिति बा बनती है और यह दशा जिनेतर देवों के निरशों में स्पिट प्रितिक विविध देती है।

वीर्ये— गावित तीन प्रकार की है—-१ बाल-बीर्य २ पं^{डित}

वीर्यं और ३ वाल-पंडित-वीर्यं।

वीयन्तिराय का अर्थ है—-शक्ति का प्रवरोध। अन्तराय के क्षयोपणम से णिक्त का कुछ विकास होता है स्रोर क्षय में होता है—परिपूर्ण विकास।

7

वालवीर्यं का अर्थं है—आरंभ-परिष्रह विषयधिकार कोर कपाय पर कुछ भी आत्म-नियन्त्रण नहीं रखने वाला श्रविरत जीव । प्रथम गुणस्थान से लगा कर चतुर्थं गुणस्थान तक के सभी अविरत जीव 'वालजीव' है ।

पिण्डत-वीयं--म्रारम्भ-परिग्रह, विषय-विकार और म्रठारह पाप के त्यागी सर्वविरत साधु-साध्वी। गुणस्यान र सं १४ पर्यन्त चारित्र-सम्पन्न।

वाल-पण्डितवीयं-अारम्भ-परिग्रहादि के ग्रंश ह्नप्रदेशांगी । पंचम गुणस्थानी देश-विरत श्रायक ।

उपरायत तीनों भेद विरति की ग्रपेक्षा से है, शारीरिव ग्रयवा आर्थिक सम्पन्नता की अपेक्षा से नहीं । भौतिक अपेक्ष तो कई वालधीय वाले भी ग्रेप दो से चढ़-चढ़ कर होते हैं



"उमाओं विसली भाण, सब्बलीयव्यमं हरा" (ता. १६ कि.)
तथा—" सद्यण्ण जिणभावतरा" (मा. ७३)

किन्तु मूर्य की उपमा भी एक द्याम है। पवात मूर्य किन्नु अभावतंत्र की स्थान किन्नु की अपनी निम्नु की अपनी व्यवतंत्र की स्थान किन्नु के व्यवतंत्र की स्थान किन्नु के व्यवतंत्र की स्थान किन्नु के व्यवतंत्र की प्रमाणित कोई वस्तु और उसकी कीई भी पर्याय नहीं रहती।

किन्नु कीने के बाद सदा स्थायों—अपर्यविधान रहता

· 責格 年 2000年 春 新港市本 新港縣 警告

大克塞江南州安 鐵品

The state the state of the stat

· 董 疊 姚璐 不知题的 翻译的 解释 ()

symmetric production in survivorate manifest menore and meta-resemble enterprise meta-resemble to the survivorate of the surviv

थे। उनका नारित्र उत्तम था और ने निरम्तर बेंक वेंके तपस्या करते रहते थे। उनकी खोडी भी पूल के लिए के निय वन्द्रनीय एवं पूज्य मानता था) अपनी भूल मुधारते के कमा-माचना करने भेजा। भगवान् के मन में प्रपते प्रविध्य एवं प्रथम गणधर के प्रति रागभाव होता, तो बेंके तप के पारणे के लिये लाये हुए माहार को यों ही घरा रहते कर आनन्द शावक को खमाने नहीं भेजते। कम से कम यह कि सहते ही कि——"अरे गौतम! तू बेंके का पारणा पहले के लि, फिर खमाने जाना," अयवा "यहीं से खमा ले।"

गोशालक ने भगवान् महाबीर प्रमू के दो शिट्यों जला कर भरम कर दिया श्रीर भगवान् पर भी तेजीलेश्या छैं थी। प्रभु को छह मास तक व्याधि रही, परन्तु भगवान् मन में गोशालक पर तिनक भी रोप नहीं आया। भगवान् श्री गौतमस्वामी आदि श्रनेक ऐसे शिवतद्याली शिष्य थें गोशालक को क्षणमात्र में राख का हेर बना सकते थे। प भगवान् की शिक्षा के श्रनुसार सभी शान्त एवं समभावयुव रहे। ये जदाहरण उनकी परम बीतरागता के प्रव प्रमाण है।

संसार में प्रनादि-काल से जन्म-मरण, रोग-झोक, विर्य गादि दु:य महते और रखड़ते-भटकते दृए जीव को झादव अनन्त मुखों का मार्ग वताने वाला यदि संसार में कोई है, त

ऐसे अरिहंत भगवान् प्रथम तत्त्व के इन में हमारे लिए परम आराध्य हैं। उन्हीं से धमं की उत्पत्ति होती है। इन्हीं के बताये मागं पर साधु, साध्यी, आयक और आविका रूप चतुर्विध संघ चल कर अपना आत्म-कल्याण करते हैं। इन्हीं के उपदेश का संकलन कर के गणधर भगवंत आगमों की रचना करते हैं, और आचार्य उपाध्याय एवं साधु-साध्यी उन्हीं आगमों के अनुसार हमें उपदेश देते हैं।

ऐसे परम बाराध्य श्ररिहंत भगवंतों के चरणों है हमारी बारवार वन्दना है।

हम कितने भाग्यशाली हैं कि एक दिरद्र को अनमील रहा मिलने के समान हमें अनायास ही जिनेदवर देव का परम पावन धमं-रतन मिला है। हमारा जन्म जैनकुल में हुआ और खिरहंत भगवंत जैसे सबं खेटठ देव-तत्त्व की आराधना का उत्तम अवसर मिला है। इस उत्तम अवसर को भीतिक चका-चोंध और फुतकियों के मायाजाल में उलझ कर खो नहीं देना चाहिये। जिस प्रकार रत्नादि सम्पत्ति को लूटने वाले चोरलुटेरे बहुत होते हैं, उसी प्रकार धमं-धन को लूट कर हमें जिनधमं से वंचित करने वाले, भीतिकवाद में उलझे हुए मिथ्या-दृष्टि कई हैं। उनसे सावधान रहना चाहिए।

गुरु तत्त्व

देव-तत्त्व धर्मेस्पी कल्पवृक्ष का मूल है श्रीर गुरु-तत्त्व इसकी शासा-प्रशासा है। भरत-क्षेत्र में इस काल में देव-तत्त्व



से प्राप्त तुआ है। उस पर पर रहे तुम पमो तार्प, गुमनव पर सुगोनित है।

मानार्यं भगवंत के बाद उपाध्याय भगवंत महामन के चीथे पद पर आसीन है। ने अनुनान के आकर, बहुअन एर गीतार्थ होते हैं। साध-माध्यियों को श्रुवासन का स्रप्यास हरू वाना उनका मुख्य कार्य है। ये महात्मा भी हमारे गुग्नद पर हैं।

महामन्त्र के पाँचत्रें पद के स्वामी सर्वत्यामी श्रमण निग्रंथ भी गुरु-पद के धारक हैं।

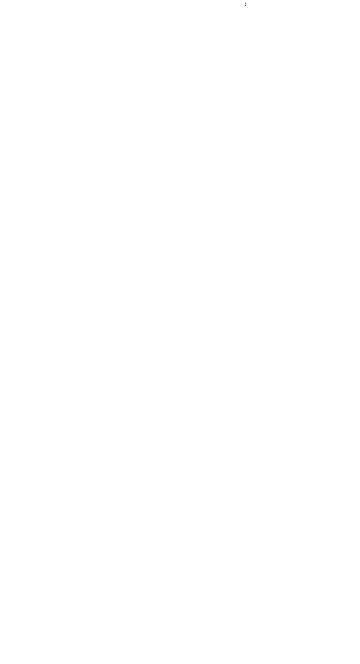
पांच महाव्रत श्रोर पच्चीस भावनात्रों से युक्त, रावि॰ मोजन का सर्वया त्याम, पाँच समिति तीन गुन्ति के पालक, नववाड़-पुक्त ब्रह्मचयं के घारक श्रोर सत्तरह प्रकार के संयम का पालन करने वाले होते हैं। संयम के सत्तरह प्रकार ये हैं;—

१-९ पृथिवीकायादि पांच स्थावर, वेइंद्रियादि चार त्रस, ये ९ जीवकाय की यतना करना, इन्हें किसी प्रकार का वलेश एवं खेद नहीं पहुँचाना।

१० अजीवकाय संयम—वस्त्रादि उपकरण त्रहुमूल्य नहीं लेना, बावश्यक उपिंघ से विशोप नहीं रखना, वस्त्रादि पर मूच्छी नहीं रखना।

११ प्रेक्षा संयम—चलते-किरते, सोते-चैठते, वस्त्रादि उठाते-रखते सावधानी पूर्वक देखना।

१२ उपेक्षा संयम-असंयम के कार्यों में उपेक्षा करना,



साथु भी तन हो। यह निसीत एतं पूर्ण संसभी स्त चन्नतं वनाने के लिये गाम्त्रों में भो शिव कताई है विक्तिय है। प्रत्य हिसी भी मा हे साहतों में इस प्रहार ह विधि महीं दिसाई देगी। परमेट्डी महामन्त्र के आराह्य पर पर स्थित महान् साद्यात तभी अन महाते हैं अम हि ने प्रपत्ता ध्येय और याचार शुद्ध रही और सभी रोवों से अनते नुष् बात्मा को विशुद्ध बनाने में ही लगे रहें।

अनगार-धर्म ही ऐसा है जो समस्त पानों से मुस्त हो कर संवर-निजंरा ह्म धर्म का पालन पूर्ण ह्मा में करता नुम्रा निरन्तर मोक्ष की बोर गित करता रहेता है। चाहै सामान्य साधु ही, या श्राचायं-जपाध्याय, साधुता के गुण तो सभी न होना ही चाहिये, तभी वह वास्तव में अमण-निग्रंन्य होता ह और तभी परमेष्ठी महामन्त्र में स्थान पा सकता है।

साधु का बहुत पढ़ा-लिखा एवं उपदेण्टा होना अति-वायं नहीं है, परन्तु आचार-विचार का निमंछ होना श्रावश्यक ही नहीं, अनिवायं हैं। और उपाध्याय एवं श्राचायं-पद के हा प्राप्त का तो श्रुतधर-अथंधर एवं विद्वान् उपदेखा होना श्रनिवायं है। श्राचार-विचार के साथ श्राममों का जाता हो तभी श्राचार्य-उपाध्याय हो सकता है। स्व-सिद्धांत के साथ पर-सिद्धांत का ज्ञाता हो, प्रमावशाली हो, धोरवीर, गम्भीर, सहनमील आचार्य, उपाध्याय, गिण, गणाविच्छेर्क महात्मा भी



८ तप—इच्छानिरोध रूप तप सदैव करते रहना। ९ त्याग--परिग्रह् का त्याग करना। मौतिक इच्छा

१० ब्रह्मचयं--विषय-वासना का त्याग कर नी वा युक्त ब्रह्मचयं का पालन क**र**ना ।

जिपरोक्त श्रमण-धर्म का पालन करने वाले साधु साध्वयों के अमण-जीवन में परीपह —किनाइयां, विप माती रहती हैं। वे परीपह ये हैं;

परीपह-जय निर्भय-जीवन सुस्रगोलियापन का नहीं है। वह आराम तलवी से विमुख हो कर श्रात्मा की स्वतन्त्रता के लिए जूमने का जीवन है। यह युद्ध दो ब्रात्माओं का नहीं, किन्तु ब्रातण मीर अनात्मा का युद्ध है। अनात्मा (जड़) के संयोग से म्राह्म पराधीनता के प्रनन्त बन्धनों में बन्धा हुआ है। सम्यग्दरान रूपी प्रकाश ने आत्म-मान जगा दिया। आत्मा को अपनी ग्रवस्था का मान हुमा। मन वह जड़ का बन्दी रहेना नहीं चाहता। ऐसे जायत और सावधान वने हुए ब्रात्मा ने पहले तो अपने वाह्य बन्धन तोड़े अर्थात् धन-सम्पत्ति मोर कुटुम्ब-परिवार ह्य मंमार से स्वतन्त्र हुमा। यत्र उसे माध्यन्तर वन्धन तोडना है। पांच गरीर इन वसमय बन्दीलाने की तोड़ कर उसे मनंथा स्वतन्य होना है। राह अवतं भिन्नारी की साम्राज्य का अधिपत्य मिलना

- 幸 歌歌 南部地震山 海绵绿 孤 東 中 安安 美女 中 安安
- THE STATE OF THE S
 - 華 觀察一心故論 新端 夢 正想本子 新培 歌 如你 不得知。
- 原原 野村 女子等 大学者 大海の日本学学会 全 新年 中心 関係 関係 は はなっ 安全衛 野童 海 福度等

^{चन्हें} नियारण भी मती हरता ।

६ मनेल-आवन्य ह वस्त्री ह नहीं पिछने पर हैं। वाला कट्ट महेगा। वस्त्र फट गये हों, मन्ड गये हों और मयोग्न नुसार निर्दोप वस्त्र गर्दी मिले, तो दीनता नर्दी लाना।

७ अरति—मावकाक आहारादि प्राप्त गहीं होने पर मन में खेद नहीं करना । विहार से यकने पर ग्लानिका अनुभव नहीं करना, किन्तुं धर्म में विशोप सावधान होना।

८ स्त्री—साधुमों का स्त्रियों (साध्यियों की अपेशा पुरुषों) की श्रोर आकषित होना मनिष्टकर है। इसलिए स्त्रियों के रूप वादि प्रमुकूल-लुभावने विषयों की बोर आकर्षित नहीं होना और स्त्री मोहित करना चाहै, तो उसके कट सह करते हुए वच कर रहेना। (अन्य परीपह प्रतिकूल हैं, तब यह श्रमुकूल है)

९ चर्या--पाद-विहार (चलने) से होने वाला कप्ट १० निपद्या-स्वाध्याय-मूमि या कहीं ठहरने के स्थान पर वैठने की जगह श्रनुकूल नहीं मिल कर विषम अथवा 'भय-कारक मिले, इससे होता हुँ था दुःख। कट्ट ।

११ मारया—अनुकूल मकान नहीं मिलने से होने वार १२ आक्रोम—कोई गाली है, धमकावे, दुवंचन वोले और अपमानित करें तो सहैन करने ह्वा १३ वद्य--कोई मारे पीटे, अंग-मंग करे, तो "आत्मा

उमे बाहे नहीं। पूजा-मरहाद ही दण्या नहीं हरे। यदि ले सत्कार नहीं करे, यन्द्रना-नमस्कार नहीं हरे, सो विश्व हैं होवे (यह भी मनुकूल परीपद दें)।

२० प्रज्ञा—बदुश्रुत प्रया गीताय साधु से बहुते लोग पूछते हैं। कई विधाद करने को भी आते हैं। उससे पि हो कर यह नहीं सोचे कि 'इससे तो खजानी रहना अच्छा जिससे कोई पूछे तो नहीं,'—इस प्रकार पीदित नहीं हो वान्ति से सहन करना।

२१ अज्ञान—परिश्रम करने पर भी पाठ याद नहीं हैं। ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो, तो श्रपने श्रज्ञान (विशेष ज्ञान नहीं होने) पर खेद नहीं करे और तपस्या श्रादि में विशेष श्र^{यह} शील बने।

२२ दर्शन—दूसरे मतावलिम्बर्यों के सिद्धांत, उन ऋदि, महत्ता, अधिक मान्यता, पड़े-पड़े अनुमामी तथा उनका प्रमाव देख कर शंका-कांक्षादि नहीं लाना । भौतिकवादी, चार्वाक आदि की मान्यता सुन कर यह विचार नहीं करना कि 'परलोक है या नहीं, जिनेश्वर हुए हैं या नहीं, मृक्ति है या सब झूठा वकवाद है। संयम और तप का फल मिलेगा या नहीं —इस प्रकार शुद्ध श्रद्धान से विचलित करने वाले विचार नहीं कर के शान्ति से सहन करते हुए 'श्रद्धा की परम दुलंग' मान कर दृढ़ रहना।

इन सभी परीपहों को सहन करते हुए संयम-यात्रा में

उसे चाहे नहीं । पूजा-सत्कार की इच्छा नहीं करे। यदि हीं सत्कार नहीं करे, वन्दना-नमस्कार नहीं करे, तो वित्र ही होंने (यह भी अनुकूल परीपह है)।

२० प्रजा—वहुँ भुत ग्रथवा गीतार्थं साद्यु से बहुतनं लोग पूटते हैं। कई विवाद करने को भी आते हैं। इससे खिर हो कर यह नहीं सोचे कि 'इससे तो अज्ञानी रहना अच्छा है जिससे कोई प्रछे तो नहीं,'—इस प्रकार खेदित नहीं हो दर यान्ति से सहन करना।

२१ अज्ञान—परिश्रम करने पर भी पाठ याद नहीं हो, ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो, तो अपने प्रज्ञान (विशेष ज्ञान नहीं होने) पर खेद नहीं करे और तपस्या श्रादि में विशेष प्रयत शोल वने।

२२ दर्शन—दूसरे मतावलिन्यों के सिद्धांत, उनकी ऋदि, महता, म्रियम मान्यता, बड़े-बड़े अनुपायी तथा उनक प्रमात्र देख कर गंका-कांकादि नहीं लाना । भौतिकवादी, वार्थाक स्नादि की मान्यता मुन कर यह विचार नहीं करना कि परनोक्त है या नहीं, जिनेस्वर हुए हैं या नहीं, मुन्ति है या मन तुरा बक्तवाद है। संयम और तप का फल मिलेगा या नहीं — इस प्रहार गृह्य श्रद्धान में विप्रतिन करने वाले विचार नहां कर के मानित में महत करते हुए 'यहा की परम दुर्जन' मान कर दूर रहेगा। इत वर्षा परीपर्ते की पहने करते हुए यंवमन्यात्रा में

ग्रादि का उपयोग करना।

२३ शय्यातर गिउ—साध्-साध्यी को ठहरने के ि मकान देने वाळे—शय्यातर के घर का स्राहारादि छेना।

२४ आसंरी--वेंत स्नादि से बने कुर्सी स्नादि ^{आई} पर बैठना ।

२५ पर्यंक-पलंग, खाट, मंचक स्रादि का उपकी करना।

२६ गृहान्तर-निपद्या---गृहस्य के घर रोगादि कार्य के विना ही बैठना।

२७ गात्र-उद्धतंन--गरीर पर पीठी आदि ^त उवटन करना।

२८ गृही वैयावृत्य—गृहस्य की सेवा करना वः गृहस्य से सेवा करवाना ।

२९ जाति आजीव-वृत्ति—-जाति-कुल ग्रादि वता व सम्बन्ध जोड़ कर आजीविका करना ।

३० तप्तानिर्वृत मोजित्व--पूर्ण निर्जीव नहीं वने । मिश्र पानी का सेवन करना ।

३१ आतुर स्मरण--क्षृद्यादि से श्रातुर वन कर श्र9 पूर्व के गृहस्य जीवन को याद करना ।

AND THE PROPERTY OF THE PROPER

. . . .

繁殖 機構 如 歌歌風 野寶 田门管 電子 松子基础单 安全的 。

多 额查心部 新語 歌歌 黄芪 的事动。

事業 動物學與如此教育的本 数如片 的复数 極新的 化水醇 歌樂。

多声素软件 斯林斯 经费证 经货币 數 不快不明 雾云

串薄 解點 安斯南 计通信编码 电活体 歌歌雨 原始。

表書 敬露 內人傷 執一致不容 歌歌 歌歌。

THE PROPERTY OF THE PART OF THE PARTY OF THE

·斯克·美国斯斯特·小斯斯特 李斯特·斯斯斯斯斯斯斯斯斯斯特 斯斯·

४१ गात्राभ्यंग— गरीर पर तेल की मालिश करने ५२ विभूषण—वस्त्रादि से गरीर मुगोनित करने उपरोक्त वावन अनाचारों-दुराचारों को टालने के सुसाधु होते हैं। उनकी साधुता निर्दाष होती है। वे वन्दर्गी पूजनीय होते हैं। मुनिवरों का जीवन सीधा-सादा के श्रात्माभिमुख होता है। वास्तविक श्रमण मुख्योलिये, जिल्ल लोलुप, दैहिकदृष्टि वाले और विभूषानुवादी नहीं होते।

निग्रंन्य-दोक्षा ग्रहण करने वाली भव्यातमा कुटुम्ब-परिवार, धन-दोलत और सभी प्रकार के सांसारिक सम्बन्ध तोड़ कर उस साधना में प्रविष्ट होती है, जिसकी संसार से कोई सम्बन्ध नहीं रहता। वे संसार ग्रीर संसारि कि सभी प्रपञ्चों ग्रीर वाद-विवादों से पृथक् रहते हैं। ज अवस्थक आहारादि की याचना करने के लिए वे गृहस्थ के में लग जाते हैं। जनका ध्येय अनादि से लगे हुए कमं-मल की परमात्म पर जनका स्थेय अनादि से लगे हुए कमं-मल की परमात्म पर प्राप्त करने का मुनत कर जनम सरण के कारणों से प्रपने को मुनत कर परमात्म पर प्राप्त करने का है। साधक समझ चुका है कि-

"यह संसार रूपी समुद्र महान् भयंकर है। इसमें जन्म जरा और मृत्यु रूप महान् दुःखों से भरा हुआ क्षुट्य और अयाह पानी है। विविध प्रकार के अनुकूल और प्रतिकूल संयोग

機構 衛衛 無知的 數縣 星猴……

ही है। सभी प्राणी संगार में दूरा भूगत रहे हैं —
"अही दुस्सी हुं संसारों, जत्थ कीसंति जंतवी"

किसी भव्यात्मा ने संसार को ग्रीम्नस्य मान है सोचा,—

"यह संसार जल रहा है। इसकी ज्वालाएँ फैन छी हैं। जिस प्रकार जलते हुए घर में से असार वस्तु छोड़ कर सार वस्तु निकालने वाला वृद्धिमान् है, उसी प्रकार अपनी ब्रात्मा को बचाने वाला समझदार है।" (भगवती २-१)

इस प्रकार संसार को दु:ख का महासागर मान कर इससे मुनत होने के लिए निग्नंथ-महात्मा जैन-प्रत्रज्या अंगीका करते हैं। यद्यपि वे अपने गरीर को ब्रात्मा के लिए बन्धन ह मानते हैं, तथापि धमं की आराधना मी इस मानव गरीर । रह कर ही की जा सकती हैं और गरीर दिकता है—आहार पानी से। गरीर को भोजन-पानी मिलता रहे, तो वह काम आहार करने का उद्देश निम्न गट्दों में बताया है;—

"अवलोवंजणाणुलेवणमूयं संजमजायामायाः णिमित्तं संजमभारवहणहुयाए मुंजेज्जा, पाणधारणहुयाए संजएण सिमयं एवं आहारसिमइजोगेणं भाविको भवा

जिस प्रकार गाड़ी को चळाने के लिए उसको धूरी में

- (४) संयम पालने के लिए—पृश्वी हामादि सत्ता प्रकार का संयम अथवा प्रदेश = देशभाल है बस्तु किने रसने में यतनापुर्वेक वर्तने या संयम् जीवन का पालन करने के लिए।
 - (५) अपने प्राणों की रक्षा के लिए।
- (६) धर्म-चिन्तन के लिए-- प्रातंध्यान की टाल धर्मध्यान में शान्तिपूर्वक लगे रहने के लिए उपरोक्त छः कारणों से निर्धय-मुनि प्राहार करते आचारांग १-३-३ में लिखा है कि 'संयम-निर्वाह के उपयुक्त आहार करे—"जाया मायाद जायए" तथा गडांग सूत्र ग्र. ७ गा. २६ में लिखा है कि मुनि संयम की के लिए आहार करे—"भारस्स जाता मुणि भुंजएनज दशवैकालिक ५-१-९२ में लिखा है कि "संयम पाल मोक्ष जाने के लिए ही आहारादि से शरीर टिकाने का भगमहावीर प्रभु ने निर्देश दिया है। साधु आहार तो कर किन्तु 'ग्राहार करना ही चाहिए'—ऐसा उनका नियम है। वे ग्राहार करते हैं, उसी प्रकार ग्राहार छोड़न जानते हैं। उनके आहार-त्याग के निम्न छः कारण, उ ध्ययन में इसके वाद ही वतलाये हैं।
 - (१) रोगोत्पत्ति हो जाने पर।
 - (२) उपसर्ग संकट उपस्थित होने पर।
 - (३) ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए। मानसिक स

बाहारादि त्याम कर किया तुआ तम ही वर्ष मय तम होता है।

कहाँ तक बतायें। निर्णयन्थ्रमण के आनार-विवार से सारे णास्त्र भरे हैं। निष्ठापुर्व ह नारिव की आराधना करें बाले श्रमण इस संसार में हम सब के लिए मंगल ह्व है उत्तमोत्तम हैं, शरणभूत हैं, कल्याणकारी हैं और देव के समी आराध्य हैं। उनके मंगलमय दर्शन हमारे लिये हितकारी हैं। जिनेन्द्र भगवान की श्राज्ञा के आराधक संयमनिष्ठ साधु हमारें लिये गुरुषद में बन्दनीय और पूजनीय हैं।

गुरु-पद हमारे लिये परम-पूज्य है। गुरुवां का हम वर्ष परम उपकार है। गुरुवों की कृषा के कारण ही हम, हमारी जाति कुछ श्रोर वंग-परम्परा सुसंस्कारों एवं सदाचार युकी रह सके श्रोर हम जिनधमं की प्राप्त कर सके। देय-श्रिरहर्निं सिद्ध भगवंतों के समान गुरु-साधु-भी मंगळ-इव है, उत्तर्म है श्रोर गरणमूत है। हम पर गुरु-पद का महान् उपकार है। किन्तु गुरु वे ही वन्दनीय हैं, जो देवाजा को हृदय में स्वाधि कर के पालन करने का रुचिपूर्वंक प्रयत्न करते रहते हैं। देवाजा के विपरीत श्राचार-विचार श्रोर प्रचार वाले तथा कथित गुरु इस श्राराध्य-पद से वाहर होते हैं।

हमारा भी यह कत्तंव्य है कि हम देव-पद आराधव गृह-वर्ग का भिवतपूर्वक आदर-सत्कार करें। उन्हें श्रपना परम पूज्य, परम हितैपी एवं मुक्तिदाता माने। उनका और उनवे चारित्र का पोपण-रक्षण करते हुए श्रपना हित साघें।

ani-ira

Manager Manager Adjusted

學課業 胡锦素树藤

BOOK WITH HE WIND WITH THINKS I -

and grant and and

जिसमें आत्मा का हित हो ज्ञानावरण हटते हुए की पर्याय विकसित हो, वह स्वाघ्याय है।

यात्मा ग्रोर अनात्मा का स्वरूप, उत्यान श्रोर ^{पट}े का स्वच्च्प, लोकालोक, पुण्य-पाप, हीनाचार-शुद्धाचार 🤫 : बन्धन-मृत्रित का उपाय बताने बाले एवं आत्मा की परमालें वनने की विधि बताने वाले पास्त्रों का अध्ययन कर^ह स्वाध्याय है।

स्वाध्याय के पांच भेद हैं--१ वाचना २ पृच्छा परावतंना ४ अनुवंका मीर ५ धर्म-कथा।

वाचना—सम्बक्-श्रुत पढ़ना-सीखना ।

पुच्छा—पढ़े हुए श्रुत की समजने के लिए प्रत प्रथम ।

परावर्तना—गीला हुआ ज्ञान विस्मृत नहीं होडी दुई।भूत तो, इमलिए बार-बार पुनरावृति करना ।

अनुबेक्षा—माने दृष्ट्र ज्ञान के विषयों पर शारि पुत्रेह विस्तृत क्यूना ।

धर्म हथा— प्राप्त जात हा छाम प्रत्य यवणे ब्हु वनो हा इत्तर उनहा नो दिल्लावना, अवीर् धर्मीपदेश देवा

इत्तराञ्चलन सुत्र अ. २३ में स्वाट्याय के दन पति वहां का कर हर प्रकार ने सवा है;--

" मध्याण्य जेते ! जीवे कि जणवद ?

दोनी है। इसन महाराज्यहरनोप रूपे का प्रति होता है। " परिषद्भवतामु जं भंते ! जीने कि भवता?

परियदृणयाए ण वंजणाई जलवड, नंजनलीं उपाएउ।

भ्रये—हे भगवन् ! सूत्रमाङ हा पुनान्युनः धनुर्गन्। करने से किम फल की प्राप्ति होती है ?

उत्तर--पुनरावृत्ति में विस्मृत व्यंजन-अभ (^{शर} होकर स्थिर रहने रूप) होता है और व्यंजन-विध्य (प्र^{हर} एवं पद लब्धि) उत्पन्न होती है।

" अणुष्पेहाएणं भंते ! जीचे कि जणवद ? अणु^{ष्} हाए आउ य बज्जाको सत्त-कम्मवगडीओ बणिवबंध^ण बद्धाओ सिढिलबंघणबद्धाओ पकरेइ दोहकालद्विद्या^{त्र} हस्सकालद्विद्याओ पकरेद तिव्वाणुमावाओ मंदा^{त्} भावाओ पकरेइ, बहुष्पएसगाओ अष्पपएसगाओ पकरी आउपं च णं कम्मं सिय बंधइ सिय ण बंधइ, असायाः वेयणिज्जं च णं कम्मं णो मुज्जो-मुज्जो उवचिणई। अणाइयं च णं अणवयग्गं दीहमद्धं चाउरंतं ससारकंतारं खिप्पामेव वीईवयह।"

श्रयं-श्रनुत्रेक्षा से क्या लाम ?

उत्तर—अनुप्रेक्षा से ग्रायु-कर्म के सिवाय गोप सात कमें की प्रकृतियों का वन्धन जो दृढ़ हो, वह शिथिल होता है,

कठिनाई से मिल सकते थे। वे खुद लिखते। बाद में लेखी से लिखवाये जाने लगे। इतना होने पर भी गृहस्थों — श्रावर्श को प्राप्त होना कठिन ही था। श्रावक तो श्रिष्ठकांश सुन ही सीखते श्रीर स्वाध्याय करते। किन्तु श्रव तो छापलानों हे साधन से गृहस्थों के लिये भी सूत्र सुगम हो गये हैं। वे खं वांच सकते हैं, और जहां साधु-साध्वी का विचण्ण नहीं हों हो श्रयवा बहुत कम होता हो, वहां तो मुद्रित सूत्र ही के श्रवलम्बन होता है। इन्हीं के सहारे धर्म संस्कार बने रहते हैं इसलिए वाचना रूप स्वाध्याय अवस्य करना चाहिये।

ज्ञान पाँच प्रकार का है। यथा—१ मितज्ञान २ श्रु ज्ञान ३ श्रवधिज्ञान ४ मन:पर्ययज्ञान श्रोर ५ केवलज्ञान।

मितज्ञान—श्रोत-चक्षु आदि द्रव्य-इन्द्रियों और । के द्वारा होता हुआ आतम-अप्रत्यक्ष—परोक्ष ज्ञान । ग्रह चिन्तन, मनन ग्रीर धारण करने वाली ग्रात्म-शिवत—वृद्धि चिन्तन कर निर्णय करने की क्षमता । नन्दीसूत्र में ग्रवर ईहा, अवाय और धारणा से मितज्ञान के चार भेद किये वृद्धि के १ औत्पातिका २ वैनियका ३ कार्मिकी और ४ पा णामिकी, ये चार भेद हैं। सूत्र में इसका विस्तार से वा किया गया है। •

दसका दूर्से तस्ताम 'आभिनियोधिक ज्ञान ' है, इहि स्रोर मन के माधन से योध प्राप्त हो, वह आभिनियोधिक इ है । श्रृत से प्राप्त हुए ज्ञान को प्रहण करना, चिन्तन कर THE REST SECTION AND SECTION OF THE PARTY SECTION O 南部 对原 和 。

新瀬海童 · 京北西 本北寺 ※ 京

李林林 美女女女 并 我你 我我的 老女。 如此 聖皇帝 医腹骨骨 大路 电电影电子 五 在海 有 秦 多

美 春水香水 我在一个本本社 學師 全成形。 经济地 在北京的 事事 觀 國際 新婚 數 報 如如此中特色生力

事業務 福光山 教教問的 衛老 松 鸣水 !

· 神田 · 李 ·

海绵棒 新种木 奉献。

美 海绵 有我心中知明 法人生的人 海 新海 新海 安

中華 经经验证券 新球球 新球球 医髓性 电影 李教皇 海海 放射性原源 神华 起 电波电 电线 衛沙 网络 : The state of the THE ROLL OF SHIPS AND ASSESSED AND With the second of the second

Carling of the with a line to

कार से— । भएगा यामांगा काल का अले माहिन्यपर्वे सभाव है। सोव जन्म स्थाप्या जान्य, पर्वे थी भविता जना। भवा । धवा है।

भाव से-किन्द्रर भगरा ना प्रकार्याण प्रारम्भ करते हैं, तर मादि घोर घंत छटा है, रर मणेतीरी **मोर** क्षायोपशमिक भावको अंग्रेश भनादि-अर्थ संस्ति है।

अथना--भवसिद्धि ह जान को अपना सादिमपर्यविति (सम्यक्तव प्राप्त करने पर प्रादि और केनलजान होने ^{पर श्रु} का मन्त हो जाता है) और अभव्य की अंपदा धनादि-ध्र^{पूर्व}

वसित (उसके मिथ्याञ्चल का कभी अन्त ही नहीं होता)। समस्त जीवों के अक्षर (केवलज्ञान) का अनन्तर्वा ^{ग्राम} तो सदैव खुळा रहता ही है । यदि दतना भी खुळा नहीं ^{रहे}

तो जीव, अजीव ही वन जाय, परन्तु ऐसा कभी नहीं होता [।] ११ गमिक श्रुत--दृष्टिवाद गमिक श्रुत है। जिस श्रु में कुछ या किसी पद की विश्वपता से युवत एक ही पद धार

बार आवे वह गमिक श्रुत है।

१२ अगमिक श्रुत--कालिक श्रुत--जिसके पार (विषयों) में एक सदृश्यता कम ओर भिन्नता ग्रधिक हो। १३ ग्रगप्रविष्ट--ग्राचारांगादि १२ ग्रंग ।

१४ श्रंग वाह्य--श्रावश्यक--सामायिकादि छह आव इयक भीर श्रावश्यक से भिन्न। आवश्यक से भिन्न दो प्रका का---१ कालिक---उत्तराध्ययनादि ग्रोर २ उत्कालिक-

दणवैकालिकादि सूत्र ।

化氢硫酸 戰無難 瞬時 我明 费 和现金。如此 和他的 如李斯松 医水及系染线

· A Mark resily in Landshift, sales and a sparie a

有大心之中 新加州 电电子电子 医二种性性 医水杨醇 調達 建硫酸 鄉 清海 高海縣 無行為中

解亲有辩证者 经 城县 化如杨春 电双排 劉鴻 襲 縣 新松縣 熱湯 中島 表出 起花珠 二 数卷 本科学 建环环烯基 安集 蛛 经存款股份 勃 多水杨 制度 熱性水蛭 樊强 食物 春食物 森野 安本布 华日 安全社会 水色的 多黄布 安斯森 寶 與 軟物 聯 · 新城 · 新城 · 新城 · 多

केंद्र करिये के कार के व्यक्ति के की 發養輕 我們得 維 無性多 新北外的技术物 無端 無心此的 富日 CHAPTER AND AND AND ADDRESS AND ASSESSED. Mark Acces

動物 等 教神 射线形 磅 鐵線 新海 數學 星

医喉缝 鐵樓 新堪 歌 经购得 计管理符号 等于张春日

३ ज्ञान प्राप्त करने वाले को विद्न उत्पन्न कर वाहि वनने से ।

४ ज्ञान श्रोर ज्ञानी से द्वेष करने से । ५ ज्ञान और ज्ञानी की श्राज्ञातना करने से । ६ ज्ञानी से वितण्डावाद करने से ।

उपरोक्त छह कारणों से ऐसे कर्म-मल ग्रात्मा पर लाई हैं कि जिनसे ज्ञान-गुण दब जाता है और निम्न-लिखित स प्रकार का फल होता है;—

१-५ श्रोत, चक्षु. त्राण, रस ग्रोर स्पर्ग-इन्द्रिय प ग्रावरण--मल छा जाता है और ६-१० इन इन्द्रियों से हैं। बाला ज्ञान भी दव जाता है।

. स्वाघ्याय करने वालों को ज्ञानाचार का पार करना चाहिये। ज्ञान के आठ ग्राचार हैं यथा---

१ कालाचार—ग्रस्वाध्याय काल छोड़ कर कालिक उत्कालिक सूत्रों के स्वाध्याय-काल के ग्रनुसार स्वाध्याय करना

२ विनयाचार—ज्ञान स्रोर ज्ञानदाता गुरु (ज्ञानी) व विनय करना ।

३ वहुमानाचार—ज्ञान ग्रीर ज्ञानी के प्रति हृदय वहुमान रखते हुए ग्रादर-सत्कार करना ।

४ उपद्यानाचार—त्याग एवं तपपूर्वक सूत्र का वांच करना।



रहा । जब मनन करने की शक्ति मिली, तो शरीर ^{बी} इन्द्रियादि तथा कषायादि पर ही विमर्श होता रहा। कुछ प्र बढ़े, तो मिथ्यात्व (प्रतत्व) पर विमर्श होता रहा । मिथ्याह ग्रविरति, प्रमाद ग्रादि के विषय में ही विचारणा चलती खी चारों गति में खाना, पीना, संग्रह करना, काम-साधना ग्री प्राप्त का संरक्षण तथा परिवद्धेन-- यही जीव की प्रवृत्ति रही सिद्धांत है कि चारों गति के जीव-१ स्राहार-संज्ञा, २ भय-सं^{ही} ३ मैथुन-संज्ञा और ४ परिग्रह-संज्ञा में लगे हुए हैं। ग्रथं ग्रीर ^{द्वार} पुरुषार्थं में ही जीव उलमा रहा स्रोर इसी विषय में विचार विमर्शं करता रहा। जीव ने धर्मं के विषय में सीचा ही नहीं। यदि सोचा भी, तो धर्म के रूप में प्रचलित अधर्म की ^{पूर} भुर्लैया में पड़ गया । मिथ्यात्व को ग्रहण कर के ग्रमिग्रहि मिथ्यात्वी वन गया। कभी सम्यक्तव रूपी सूर्यं का प्रकाः पाया ही नहीं । जब अकाम-निर्जरा से मिथ्यात्व-मोहनीय क की ६६ कोटाकोटि सागरोपम प्रमाण से कुछ अधिक अत्य^{ात} दीर्घ-स्थिति के कमें खपा दिये और मात्र एक कोटाकोटि सागरो^क प्रमाण कर्म ग्रवशेष रहे, तव भन्य-जीव ने अपूर्वकरण कर^{\$} सम्यवत्व सूर्यं का प्रथम दर्शन किया ।

सम्यक्त्व—मुक्ति पथ का प्रवेश द्वार

मिथ्यात्व, संसार-चक्र में फँसायें रखने वाला है ग्रीर सम्यक्तव, मोक्ष के परम सुख प्रदान कर आत्मा को परमात्मा

तारिज धर्म

विरति ती आवङ्गकता

अनिर्दात-- पपरपाध्यानी - हपाय-बनुष्क के दृश्^{हें} होती तुर्दें आतमा को निरंतुचा पन्ति, अमर्यादित आवश् आरम्भ--परिग्रत् एवं कामभोग की अपरिमित दृष्क्षी ।

मिथ्यात्न आसन से प्रात्मा का लक्ष्य ही प्रशुद्ध ^{रह्} है। जब मिथ्यात्व तृद जाता ते भीर तेयोपादेय का विवेक ह जाता है, तो मिथ्याल की विश्वाल भूमि पर से ऊपर सम्मात की प्रथम सीक्षी प्राप्त हो जाती है। एक सीक्षी चढ़ने के बार श्रामे बढ़ने के लिये विशेष प्रयत्न करना पड़ता है। सम्य^{त्त} की प्रथम श्रेणी तो ग्रनायास भी प्राप्त हो सकती है। प्रकान निजंरा से जनहत्तर कोटाकोटि सागर प्रमाण मोहनीय कर्म की स्यिति ६ य की जा सकती है। भव्यत्वादि कारणों से अजानपन में ही इतनी निजंदा होती है। यथिप इतनी भारी कर्म-निजंदी में भी श्रात्म-पराक्षम होता है स्रोर प्रकृति-मद्रता, विनयशीलती अनुकम्पा आदि शुण गायों से आत्मा अनन्तानुबन्धी के वन्धन को णिषिल करती हुई यथाप्रवृत्तिकरण तक पहुँचती है। वि प्रवृत्तिकरण को स्थिति तक पहुँचने के पदचात् यदि ग्रात्म अन्ध-पुरुपार्थं से भी आगे बढ़े, तो उसकी आंखों पर बन्धी हैं श्रविवेक की पट्टी श्रचानक गुल जाती है। यों अन्धे की अंह मिल गई। श्रव उसने सिखपुरगत्तन का मागं देख हिया उसकी श्रन्धी भटकन मिट गई। अब उसे आनन्द का धा THE AS NOT THE A THE A PART OF A THE AS A PART OF A PART

THE STATE OF THE S

और भोतनृत्व मानता है और मोक्ष तथा उसके उपाय ही स्वीकार करता है, तो उसे मोक्ष प्राप्त करने के लिए मोत है उपाय रूप विरति का स्रादर करना ही चाहिये। आत्मा, बाली की नित्यता, कर्मकलृंत्य ग्रीय भोगतृत्व—ये चार वातें न ती साध्य है स्रोर न साधना। ये तो अपने स्राप सिद्ध हैं। इह न मानने से ये अन्यया नहीं हो जाती ग्रोर न इनका स्वनाव पलट सकता है। मानते हुए भी इनकी स्थिति में परिवर्तन श्रीर श्रात्मा का उत्थान तथा मुक्ति तब तक नहीं हो सकती, जब तक बाद की दो बातें स्वीकार कर के साधना नहीं की जाय। मोक्ष (आत्मा की परम गुद्ध एवं परिपूर्ण अवस्था) को साध्य मान कर, उसके साधनभूत व्रतादि उपाय मानने पर ही सम्यत्व-भूमिका प्राप्त होती है स्रोर उस भूमिका से आगे की श्रेणी तभी प्राप्त हो सकती है, जब कि विरति की साधना उपाय किया जाय। वर्तमान अवस्था में संतुष्ट हो कर बैठे रहना और साधना के प्रति ग्रनास्या रखना, तो सम्यक्त भूमिका से भी पीछे हटना है। श्राराध्य ग्रीर ग्राराधना में श्रद्धा होना सम्यक्तव है—प्रथम श्रेणी है और अराधना के द्वारा साध्य की ग्रोर वढ़ना—विरति है।

वर्तमान स्थिति में संतुष्ट रहने की बात भी एक प्रकार से भुलावा है। किसी की अनायास लाम हो जाय, तब वह उस अयं-लाभ को छोड़ नहीं देता। पास में यथेष्ट होते हुए भी अनायास हुए लाभ को वह लेता ही है। यदि वह विस्त

मदनराज के मामने वाली जन पर जम जाती है। युक्ती है सोंदर्ग देग कर मदनराज वकरा जाता है। मुन्दरी का ग्राह्म उनके मन को प्रपत्ती और खिनता है। मदनराज प्रनेतिहों से प्रज्ञ तक बचा रहा था। जतएव बहु मामने बैठी दुई पृक्ती से बोलने में भी हिनक रहा था। किन्तु जस मुन्दरी ने मदनगढ़ की हिनक दूर कर दी। युक्ती ने पूछा—"आप कहीं जि रहे हैं ?"

"में दिल्ली जा रहा हूँ। आप ?"

"में भी दिल्ली जा रही हूँ । अच्छा है--आपका और हमारा साथ रहेगा । दिल्ली में कहाँ ठहरेंगे--ग्राप ?"

घनिष्टता वढ़ती है। दिल्ली स्टेशन पर उतरते सम्ब तो दोनों चिर परिचित मात्मीय जैसे वन जाते हैं मीर एक ही होटल में ठहरते हैं। दूसरे दिन जेढ़ पहर दिन चढ़ने पर पुबर्ष की नींद खुलती है मीर वह अपने आपको अकेला पाता है। वह कोकिला को अपने पास नहीं देखता है, तो सोचता है— 'शोच गई होगी या स्नानगृह में होगी।' प्रतीक्षा असहा होती है और वह खोज करता है। उसकी म्रांखें तब खुलती है, जब वह समफता है कि कोकिला उसकी होरे की मंगुठी, गले की माला, मूल्यवान् घड़ी भीर लगभग १७०० के नोट सहित वह सुन्दरी एक ठग-मण्डली की सदस्या थी। ठग-मण्डली इस ताक में रहती थी कि कोई मालदार मासामी सेकण्ड या फर्ट





ld utakk finu dust y uje ak ka mijus jera 1840 y uus seut y

स्वित्तं सामवित्तिः स्वतः स्वतः स्वतः स्वतः स्वतः स्व क्षेत्रं स्वतः स्वतः स्वतः स्वतः स्वतः स्वतः स्वतः स्व द्वाः स्वतः स्वतः स्व तो द्वाः है, स्वतः स्वतः स्वतः स्वितः है। विद्याः स्वतः स्वतः स्वतः स्वतः स्वतः स्वतः स्वतः स्वतः है। वृत्तः स्वतः स्वतः स्वतः स्वतः स्वतः स्वतः स्वतः स्वतः स्वतः स्व वृत्तः स्वतः स्वतः स्वतः स्वतः स्वतः स्वतः स्वतः स्वतः स्व वृत्तः स्वतः स्वतः स्वतः स्वतः स्वतः स्वतः स्वतः स्व वृत्तः स्वतः स्वतः स्वतः स्वतः स्वतः स्व स्वतः स्वतः स्वतः स्वतः स्वतः स्वतः स्व स्वतः स्वतः स्वतः स्वतः स्वतः स्वतः स्व स्वतः स्वतः स्वतः स्वतः स्वतः स्वतः स्वतः स्वतः स्व स्वतः स्व

कि सेवाल है। किह कर्ने क्रमान करने की क्रावालका महि सेवाल है। कि तो के क्रावाल करने की क्रावालका महि साम है। के तो कर्ने क्रावालका महि साम है। के तो क्रावालका महि साम है। के तो क्रावालका महि साम है। के तो क्रावालका महि साम है। क्रावालका महि साम है

و يعالم

प्रत्या मन्द्रव हिन्दी (महे या हुई ही और 13 रहा है हैं कोई सूजता मन्द्रम प्रमें तीन वाले द्वारा संज्ञाने के लिए हैं मार्ग बचाने, तो उमे रामा-रंपी नहीं कहा जा सकता। है को मला प्रोर बुरे का ज्या, पाप को पाप प्रोर धर्म को ज वताना न तो राम-द्रेप है, न पुराई ही है। जिन बीनरी भगवंतीं ने यह विते ह-वृद्धि प्रदान की, वे खेदन थे। वी का हिताहित एवं सुरा-दुरा जानते थे। जीवों को दुःवीं है मुक्त कर के परम सुमी बनाने के लिए उन्होंने हितीरहैं। दिया है। उन्हें प्रपने समान रागी-द्वेषी कहना अज्ञान है।

एकेन्द्रिय जीवों के तो वचन योग भी नहीं है और विकलेन्द्रिय के वचन-योग होते हुए भी मनोयोग के ग्रमाव सोचने समझने की शक्ति नहीं है। उनका वचन-योग भी औ रूप से होता है। उनमें संज्ञी-श्रुत बाले जीवों के समान सीव समझ कर बोलने की पावित ही नहीं है। इसलिये वे मनुष्य के समान वाणी-व्यवहार नहीं कर सकते। उनकी इस हीनद्शी से वे वीतराम नहीं हो गये। यह भी उनकी विवशता ही है। वे अनक्षर-श्रुत के समान कुछ न कुछ बोछते, चीखते, चिल्लाते हैं। इसीसे समझ लेना चाहिए कि विकलेन्द्रियों की वह विवशता है कि वे वचन-योग का ठोक उपयोग नहीं कर सक्ते। उन्हें विरत मानना सर्वथा अनुचित है।

श्रवत भी आत्मा का महान् शत्रु है। यदि इसका निग्रह कर के विजय प्राप्त नहीं की गई, तो मिथ्यात्व ह्यी दवे हुए हु तराब्रह सु कट्च घटना है। ब्रह्म श्रद्धक स्थित संक्ष्म है और क्ष देश लक्ष्म स्थित

विकास स्थाप साम्युर्वेश प्रक्रमा प्रमुख क्षेत्र देश स्थाप स्याप स्थाप स्याप स्थाप स्याप स्थाप स

के सहिते हैं। संस्थान करते हैं। किंद्र उन्ते करकार करन की सामामस्या संस्थान करते हैं। में साम के उपका परित्य करने स्थान की स्थान कर न स्थान है को कर करकार परित्य करने द पहुँचान पड़ि करने हिम्मस्य क्षिम्य करने परिव्या कर कर्म की सामित करने हैं। के स्थान परिव्या को स्थान है करने का करने स्थान कर महिल्ला की दिल्ला को स्थान है स्थान करने के

पर पोष्ट है। ए महेब हुआ का बैलाक होना है। प्रकार पास में प्यार समाहे। राज्य स्वास कि विकास कर कार्य हैन के उत्तर में भारत अपनी विभाग ने 4 F 17 3 1

विनक्त भाषा पर राष्ट्रमात की तोजनगा की है भनेतिकार बातर सन्छ ना स है, किस्तु क्लिस अप ह बीच नहां होता. व्यापन को तनगान शासन जना नाहि करणों है मन म अनेता है जा कार्ग हमात दोनों है और र मा स्वामी का मफल करवा बाहत है, किन्तू अवक मन कुल-परा भणा। एउ को पानव्हा किएने, लाहनी भया राज्यन्वण हा भय होता है। भवः उनका जीवन प्र मनेतिकता से बचा उठता है। फिर जा ऐस लाग प्राने निर् का अनिष्ट चाहते हैं, दूसरी की तस्तुवर उछवाते हैं, दूसरी सुन्दर स्त्री को देश कर लालायित होते हैं और पराई समृद्धि कर सोचते हैं कि मुझे भी ऐसी ऋदि प्राप्त हो सो अच्छा है

में, मूतपूर्व सेलाना रियासत के एक ऐसे प्रधिक को जानता हूँ जो लोगों की दृष्टि में पान्त-स्थमाय के थे यदि कोई बड़ा, बराबरी का या छोटा व्यक्ति उनका प्रवम कर देता, तो वे चुपचाप सहन कर छेते। उनके चेहरे प अप्रसन्नता का माव ही नहीं जलकता था। किन्तु अवस प्राप्त होने पर वे उससे बदला ले लेते। जहाँ तक होता स्व पृथक्—आड़ में रह कर दूसरों को आगे करते ग्रीर उसक



दोनों का समावेश हो जाता है। विरति में श्रेष्ठ धर्म तो सं विरति—श्रनगार-धर्म ही है, परन्तु जिन आत्माग्रों में जरण क्षयोपणम नहीं हो, प्रत्याख्यानावरण-मोह के उदम हे हैं अनगार-धर्म नहीं श्रपना सकता हो, तो भी अनगार-धर्म पूर्ण आस्था रखता हुआ और उसकी प्राप्ति की भावना रखी हुआ देणविरत-श्रायक बने । यथायोग्य व्रत-प्रत्याख्यान कर्म वह आगे बढ़ कर पाँचवें गुणस्थान में पहुँच जाता है। ही मुनित के कुछ निकट हो जाता है। पाँचवें गुणस्थान में किं एक-छोटे से व्रत का पालक, निम्नतम स्थान पर रहा हुआ श्रावक भी होता है और साधुता के निकट—सर्वोच्च श्रमणभू प्रतिमा का पालक भी होता है, अपनी योग्यता के अनुमार प्राप्त का पालक श्रावक मनुष्य करना चाहिये। जैन-के कि प्राप्त मनुष्य के लिये श्रणुवतों का पालन अत्यंत सुगम है।

पगतिलियों जार की घोर रहे। उन पर मध्य में—प्राप्ती के नीने, नायें हाथ को हथेली नीने पूजी रहे और अ बाहिने हाथ की हथेली इस प्रकार रहा कि जिससे दोनें के के अंगूठे। मिल जाय। उन अंगूठों पर दृष्टि स्थिर ख

पर्यंकासन—दाहिने पीच का पंजा बायीं जंध नीचे स्रोर बाये पीच का पंजा दाहिनी जंबा के नीचे कर--पालयी आसन से बैठ कर--पूर्वावत ध्यान-मुद्रा कर

श्रासन दृष्ट, स्थिर और कड़क हो और ध्यान में इ पिथकों के प्रत्येक पद के प्रयं पर, अपनी प्रवृत्ति में हुए की लोज हो। उतावल चञ्चलता और उकताहट के विधिपूर्वक ध्यान किया जाना चाहिए। ध्यान पालने की कि करने के पपचात् लोगस्स का उच्चारण किया जाता की लेगस्स 'चौबीस तीर्थंकर भगवंतों की स्तुति है और गद्यान हो कर पद्यमय (गायाबद्ध) है। इसे गाया की लय में गाना चाहिये और भिनतपूर्वक हाथ जोड़े हुए गाना चाहिये जिनेयवरों की स्तुति करते समय भी बेगार टालने के सम

शीझता पूर्वक और निरादर युक्त — गिनती बोलने की तर बोल जाना उचित नहीं है। इससे यथार्थ लाभ नहीं होता। लोगस्स के पाठ से मोक्ष प्राप्त जिनेश्वर भगवंतों व स्तवन करने के बाद, यदि त्यागी प्रक्रियन कर नुस्सानी

स्तवन करने के बाद, यदि त्यागी मुनिराज या महासतीज उपस्थित हों, भ्रोर उनके स्वाध्यायादि किसी कार्य में बाध

मेता, ध्यान, सालाक अध्याम स्रोर मिन्नांतधनण विवास सकता है। सामायिक का काल प्राराधना में दी व्यतीन है। भुभभावों में आत्म-तल्लीन रहे, नूतन ज्ञान की प्राप्ति हैं। ब सीरों हुए मान की पुनरा कि हो, लेकमात्र भी अग्रुभ किल नहीं हो, सांसारिकता—राजनीतक, सामाजिक, ब्यावसार्कि भोर कोट्रिम्बिक विषयों को —स्पर्ध हो नहीं किया अव। साधु-संतों के व्यास्यान में सामायिक की जाती है, परनु इ युग में कई वनताओं के ज्याख्यान लीकिक ही गये हैं। की हास्यादि मनोरंजन से श्रोतागण पर छा जाने का प्रयत्न कर्त हैं, जिससे सामायिक भी दूषित हो जाती है और आत्मा में हास्यमोहनीय स्रादि छाई रहती है। जिस व्याख्यान में वैरायः रत भरपूर हो, हेय-ज्ञेय उपादेय का विवेक हो, जीव-अजीव, म्रात्मा-परमात्मा, पुण्य-पाप, धर्म-अधर्म ग्रीर बन्ध-मोक्ष की स्वरूप वतलाया जाता हो, ऐसे व्यास्यान सामायिक कार्त को सफल वना सकते हैं।

जिनेष्वर 'भगवंत का स्तवन-स्तुति या स्तांग्र भी सरागता बढ़ाने वाले नहीं हो । जैसे कि वाल अवस्था के सेल, माता के मनोरथ, लग्न आदि संसार अवस्था का रसीला गायन, राजुल की विरह-वेदना के काव्य, अरिस्टनेमिजी से सत्यभामा-रुविमणी आदि के फाग खेलने और मोहोत्पादक वंग-वाण छोड़ने वाले सम्वाद । ये सब उदयभाव की कियाएँ हैं, भले ही इनका सम्बन्ध 'भावी जिनेश्वर देव से हो । यदि

विभागत प्रदेश को इनका बर्चन करना पते. तो तीन प्रवाद करे. ¹ प्रावद करनी की क्षीशाला के लाग भाग के लगान को वें बहु कर सामें कर जाता जीका है।

A Hading in and and an analysis of the analysis and an analysis and analysis and an analysis a

THE RESIDENCE OF THE PARTY OF T

में नहीं जाने देना। इसके लिए स्मरण-स्तृति स्वाध्याय कुछ भी अवलम्बन लिया जा सकता है, परन्तु विशेष लाम लिए व्यान—एकायता बढ़ाने का पुरुषार्थ करना ब्रावस्वह है

श्री स्रनुयोगद्वार सुत्र में सामायिक के पात्र की संवे में पहिचान इन गब्दों में कराई है;—

"जस्स सामाणिओ अप्पा, संजमे नियमे तवे। तस्स सामाइयं होइ, इइ केवलि भासियं॥१॥ जो समो सब्वभूएसु, तसेसु थावरे सु य। तस्स सामाइयं होइ, इइ केवलि भासियं॥२॥"

— जो ब्रात्मा को शांत रख कर मूलगुणरूप संवन् उत्तरगुणरूप नियम ब्रोर अनशनादि तप में लगाये रहता हैं। उसी को सामायिक होती हैं— ऐसा केवलज्ञानी सर्वज्ञ-सर्वदर्शी भगवंतों ने कहा है। जो साधक त्रस ब्रोर स्थावर—सर्ग प्राणियों—पर समभाव रखता है, उसे सामायिक होती है। ऐसा केवलज्ञानी भगवंतों ने कहा है।

तात्पर्यं यह कि सामायिक में मनोनिग्रह हो कर संय-मित होना और प्रशस्त परिणति होना आवश्यक है, तभी वह भाव-सामायिक होती है। विना भाव-सामायिक के द्रव्य-सामायिक नगण्य रहती है।

विदोपावण्यक में उपरो सिंद निम्न गाया भी है; — जने गायाओं के ग्रतिरिक्त

;

Example of all properties and the 注意传统,大学 1.

रे वनाक्ष्मणान । १४ क वृत्र छन in our, while, him, in, any on this भ भने को नार्गा अपने का इंड्यमाण है। पूर्वार्थ मानापक प्राप्त करण भारत्य प्रकार वाग है 🗝

- र प्रतिक्र ल्यानपुननसम् । व व्यक्तिस्
- र पत्राको। इच्चात्र पत्र पाउठा का (कार्यक्री विक्र करवा क
- र जाभावं दयाहि अभ कि भावत में मार्गिक icress 1
- ड मने--धर्मा मामन का नोरा रन करसामावि 473H 3
- ४ भय-- कियो प्रकार के भय में वचने के लिए सामें यिक करना ।
- ६ निदान—सामापिक का भोतिक कल चाहने हर निदान करना।
- ७ संगय—सामायिक के फल के विषय में शंकावी^त रहना ।
- ८ रोप—रागद्वेषादि के कारण सामायिक करना ग्र^{व्वा} सामायिक में रागद्वेष करना ।
- ९ श्रविनय—देव, गुरु और धर्म का विनय नहीं ^{करनी}

entral and a free are that a free are that

्रा सम्बद्धे के बुक्ता राज्यम् का यन्त्र स्टाप नेश स्टब्स १ इ.स. स्टाप्त स्टाप्त स्टाप्त के व्याप स्टाप का स्टाप

म् कृत्र कृत्रिक स्थित हैंग्या क्रिकेट सुरू सुरू संदेशक स्थाप क्रिक्स व देश क्रिकेट से स्था है स्थाप हैंग्यासिट्ड व्याप्त से देशका संदेश से

· 建硫醇 基础设计 看在各 安全者 大字之为了 9 【董重成性》一《张林诗其歌 唐 董广》《张文志·传之》《 洛尔典

कोर संस्य का सम्मान हो। दिस्मी दिस्मी की हिर्देश हो, स्वयन्त्रीत स्वतन हो दे सहस्रोत्तर — विकार दिस्मी रचे अवदेश को सम्मान है।

在海南北京大学中國 東 紅草 起 电线电子电影系统

र निर्धात--यमन्य, योजा सन्त एवं अयोग्युं ्री कर नोजना ।

रे॰ मूणमूण--स्पाद सपुत्रेस नहीं बोल कर मुनानात रेस प्रसार तत्तन सम्बन्धी होयाँ हो समग्र हरे स रेपाण हरते से जनन सम्बन्धी धतिनार नहीं लगता।

रे कायपुष्प्रणिधान—शरीर सम्बन्धी बुरी कि करना । बिना पुंजी जमीन पर बैठना, शरीर से साउध कि करना । इस अविनार के बारत भेद इस प्रकार हैं—

- १ जुमासन--पीन पर पीन चढ़ा कर इस प्रकार बैठन जिससे गुगजनों का प्रधिनय ही और अभिमी प्रकट हो।
- २ चलासन—अस्थिर आसन, बारवार ग्रासन बदलना
- ३ चलदृष्टि--दृष्टि को स्थिर नहीं रख कर इधा उधर देखते रहना।
- ४ सावद्यकिया—पापकारी किया करना, संकेत करना सांसारिक कार्य अथवा घर की रखवाली ग्राहि करना।
- ४ आलम्बन-- ग्रकारण दिवाल, खंभा ग्रादि की सहारा ले कर वैठना।
- ६ आकुंचनप्रसारण—विना कारण हाय-पाँव फैलाना और समेटना।
- ७ भ्रालस्य—आलस्य से यरीर को मोड़ना और

स क्षेत्रबंध्यान क्षेत्रबंध्या स्ट स्ट स्ट स्ट स्ट स्ट स्ट स्ट स

ें इंग्रेस्ट्रिक को देख इच्छिन्छ :

京本 (14年) (14年) 安衛 (14月) (14年) 現 (14年) (14年) 安衛 (14月) (14年) (14年) (14年) 東京 (14年) (14年) (14年) (14年) 東京 (14年) (14年) (14年) (14年) 東京 (14年) (14年) (14年) 東京 (14年) (14年) 東京 (14年) (14年) 東京 (14年) (14年) 東京 (1

ेर्ड निर्मान-स्थानिक विचार लेगा, देवनर र

है कह देख देखकान संबंध है है है एकता होत्यों करण के कार्य मेट स्टिएंड अप से सम्बर्धना : - पृष्ट केर्याकील मान्युक्ताहियां है संबंध के कि ही रहे सम्बर्ध

्रवृत्तिका क्रान्त्रं क्षाचर चार ग्रान्ते हुन्। क्राक्षाविक क्र तिरुष्टिकाराकाम् वैक्षाचनकाम् वर्षाः क्षर क्षर क्षर क्ष

一個性時期間開門者主要者也以後有不多的時中



्रह्मा राक्ष्मिक हैं। इंड इंग्लब्स कर है। ब्रिड इंग्लिंग्ड प्याप्त कर गर्ने स हैं के पुरुष्ठ प्रवास कर के अहमान की कि उपने मार में हैं कोई इंड प्रकार कर है है के यह स्थापन मार्ग की कुन है के हों है कीई बंद प्रकार है के

· 明明·明·成二章 法,每何定处不到一部,如何以时与三年 新考安许董安克教、第一部的"大学"的第一部的第一部员。 साधना है। पोषद्य के चार भेद इस प्रकार हैं।—

१ आहार त्याम पीषध—नारीं प्रकार के बाहार का त्याम करना।

२ शरीर संस्कार त्याग पीषध—स्वान, मंत्रव, जबटन, पुष्प-माला तथा सामूपणादि का त्याग करना--शरीर की शोभा बढ़ाने वाली प्रवृत्ति नहीं करना।

३ त्रह्मचयं पीषध— मैथुन त्याग । उपलक्षण है श्रोतादि सभी इन्द्रियों के चैपियक मुख का त्याग कर, ज्ञान ध्यानादि में रमण करना ।

४ अव्यापार पौषध— ग्राजीविका तथा संशाः सम्बन्धी सभी सावद्य योगीं का त्याग करना।

इस प्रकार चार प्रकार का पोषध करके मन को शां वना लेना, सांसारिक सभी सावद्य कार्यों के भारी बोझ है एक दिन-रात के लिए उतार कर आत्म-शान्ति का अनुभ करना और आत्मा में हलकापन एवं शान्ति का अनुभ करना। यह संसार में तीसरा विश्वाम है। (ठाणांग ४-३)

सामायिक की विधि के समान पोपध की विधि के स्वाध्याय, श्रवण, वाचन, पृच्छा, श्रनुप्रेक्षा, स्तुति, समरा ध्यान, प्रतिक्रमण श्रोर अनित्यादि मावनाएँ आदि का चिन्त करते हुए पोपध का काल श्रात्मा की धर्म में लगाये हुए पूरा करना चाहिए।

समजना चान्छि। घाउ प्रत्ने से कम हो, यह काल^ह वेश-पोषध है।

भाव पीपश—प्रीरियक भाव—समञ्जेष अर्था आतं-रोड ध्यान को त्याम हर धर्मध्यान में लीन रहना।

थानकों का दया (छ: काया) प्रत भी देशनीपप ही है। मगवती पुत्र १२-१ में संपानपुष्काली प्रकारण में लिखि भोजन कर के पौषध करने के प्रसंग से भी देश-पौषध की परिपाटी सिद्ध होती है।

पौपध में सामायिक करना या नहीं?

देश-पोपघ वाले के सावय-व्यापार किसी ग्रंश में बुलाहें' ' श्रयवा सर्व-पोपध में एक करण एक योग आदि से प्रत्याख्यान ही तो सामायिक करना सार्थंक है, किन्तु दो करण तीन योग के सर्व पोपध में, सामायिक का समावेश अपने-आप हो जाता है। जो इस प्रकार का पोपध करे, उसके लिए पृथक् रूप से विना किसी विशोपता के सामायिक करना, कोई खास महत्व नहीं रखता।

निर्दोप रूप से पोपध करने के लिए, पोपध के पूर्व दिन निम्नलिति त दोपों से वचना चाहिए—

१ पोपध के पूर्व-दिन ठूंस-ठूंस कर खाना।

२ पोपध की पूर्व रात्रि में मैथुन सेवन करना।

रे पोपघ में प्रवेश करने के पूर्व नख-केश आदि की सजाई करना।

A death of challe of shalls disperienced t

A ALL AND S. POST HALL AND ANDREAD SEALS.

जीवन में काले बाने रोप

i wiste win a new an army :

h man an an annian a

FRITTE WE WANTED

क्षात्र के कुछक सहक कर कर क्षेत्र कारक मन्त्र मन्त्रिक कुछक सहक कर कर क्षेत्र कारक मन्त्रि मन्त्रिक कुछक रहेब कार ग्रह के हैंबे कार मन्त्रि मन्त्रि

本 建锅 《号 林文彩》

支援機能和 松松 素的 经产品的

w wedle first to bell with a first w

医动脉 萨 拉頭 耶路 的战 耶林事

· 新级 新物 ·

建軟 服務的的 童 動物的 4

大海南大縣 电影影响 医动物性 电接电影线 经转换

और तुप भी कमी हा बन्ध हरना—मूर्यंता का हाये है।

"अमण-निर्माशों को मत्रामु ह- प्रनेपणीय प्राह्मरादिकी वाला अल्प प्रायुक्त का (जनान में या भैगत प्रयत्न पृत्राक्ता में ही मरने कृष) बन्ध करता है और निर्दाप प्राह्मर देने वाल दीर्घायु का बन्ध करता है। दूपित आहार देने से दुःहमः जीवन कृष दीर्घ आयु का बन्ध होता है और पथ्य कर प्राह्म देने से शुभ दीर्घ प्रायु का बन्ध होता है" (भग. श. ५ उ. ६)

"श्रमण-निर्यंत्यों को प्रामुक एपणीय = अचित एवं निर्दोष आहारादि प्रतिलाभने वाला श्रमणीपासक ग्रपने कर्मी की निर्जरा करता है" (भग० ८-६)।

यह वारहवां व्रत श्रमण जीवन की अनुमोदना हैं। जो श्रमण को उत्तम श्रोर मंगल ह्य मानता है, वहीं भावपूर्वक श्रमण को प्रतिलाभता है। उनकी पर्युपासना करता है। श्रमण-निग्नंथ की पर्युपासना से धमं-श्रवण करने को मिलता है। धमं-श्रवण से ज्ञान, ज्ञान से क्रमशः विज्ञान, प्रत्याह्यान, संयम, अनास्त्व, तप, क्रमंनाश, निष्कमंता श्रोर मुक्त होती स्वर्णत श्रमण-निग्नंथों की पर्युपासना का परम्परा फल व्रति प्राप्त होना है (भग० २-४) इसलिए श्रतिथि-संविभाग व्रत का पालन भाव पूर्वक करना चाहिए।



उपासक-व्यक्तिया

ाद है। संबद्धाः हैं, द्वारावाताता स्वत्यास , सर्वयासा है। स राष्ट्रसा है, स्वत्यास क्षेत्र व्याप्ताः भा स्वत्यासक स्वत्या है द हैं, द्वारावास क्षेत्र सेंट सा भागस्य स्वत्य साम्य साम्य स्वत्याः हैं। द्वारावास क्ष्यास क्ष्र स्वत्यास स्वत्य साम्य साम्य प्राप्तिक

THE REPORT OF A PART OF A



्रिकेट क्रिकेट क्रिकेट

THE STATE OF THE S

THE RESERVED AND ACCOUNTS OF THE PROPERTY OF T

१० उद्दिष्ट भवत त्याग प्रतिमा—पूर्वातत समी प्रतिमाओं के नियमों का पालन करते हुए इसमें विशेष हुए ने बोदेशिक आहारादि का भी त्याग होता है। वह अपने बात का उस्तरे से मुण्डन करवाता है, अथवा शिखा रखता है। यदि उसे-कोटुम्बिक-जन, द्रव्यादि के विषय में पूछे, तो वह जानता हो तो कहे कि "में जानता हूँ" श्रोर नहीं जानता हो तो कहे कि "में नहीं जानता ।" इस प्रकार यह कम से कम एक दो श्रोर तीन दिन तथा अधिक से श्रधिक दस मास तक इस प्रतिमा का पालन करता है।

११ श्रमणमूत प्रतिमा— पूर्वावत दस प्रतिमाओं के सभी नियमों का पालन करने के सिवाय इस प्रतिमां का घारक श्रावक अपने सिर के वालों का या तो मुंडन करवाता है, या फिर लोच करता है (यह उसकी शक्ति पर निमंर है) इसके अतिरिक्त वह साधु के ग्राचार का पालन करता है। उसके उपकरण और वेश, साधु के समान ही होते हैं। वह निग्रंन्य-श्रमणों के धमं का वरावर पालन करता है, मन और वचन से ही नहीं, किन्तु शरीर से भी सभी प्रकार की किया करता है। चलते समय वह युग-परिणाम मूमि की देख कर चलता है। यदि मागं में त्रस जीव दिखाई दें, तो जनकी रक्षा के लिए सोच-समझ कर इस प्रकार पांव उठाता श्रीर रखता है कि जिससे जीव की विराधना नहीं हो, जीवों की रक्षा के लिए वह अपने पांव को संकुचित अथवा देढ़ा रख

र निम प्रकार नार सहक, गठ मृत्र की बाजा दुर की किए भार की जलग एक कर जनना चर निकाम जेता है उसी प्रकार अम्भाषामक, मामाधिक और देशा रक्षांसिक की पालन करते हुए, जनने समय नक अपन पाप-गार की प्रति

रे जिस प्रकार भारवात्क, प्रयने बोदा हो उतार कर मार्ग में पड़ते हुए नागकुमारादि देवालयों में जा कर विश्वाम लेता है, उसी प्रकार श्रमणोपासक, अध्टमी, चतुर्दशी, पूर्णिमा मोर अमावस्या को प्रतिपूर्ण गोपध कर के, उतने समय प्रपनी

जीनधर्म का आस्तिकवात्

प्रास्तिकवाद प्रोट नास्तिकवाद, इन दो बा संसार की समस्त निवारद्याराएं विभवत ही सकती म्रास्तिकवाद का मामान्य अर्थ है—'अस्तित्व स्वीकार व वाला मन्तव्य ' ग्रोर नास्तिकवाद का ग्रथं है-'अस्तित्व श्रस्वीकार करने वाळी विचारधारा ।' सामान्यतया एक रूप से त्रास्तिक या नास्तिक तो कोई भी व्यक्ति मिलेगा। मनुष्य में किसी न किसी विषय में प्रास्या ह भनास्या रहती ही है। कम-से-कम अपने जीवन, शर टिकाने के साधन—भोजन, पानी, रोग-निवारण के साध कोपधी, माता-पिता, भाई-भगिनी, पत्नी, पुत्रादि तथा सीन चौदी, घर आदि सम्पत्ति और दृश्यमान पदायौ पर आस तो सभी को होती है। चन्द्र, सूर्य, वर्षा, जन्म, वचप युवाबस्या, मृत्यु, राजा, राष्ट्रपति ग्रादि, अधिकार ग्री श्रधिकारी, ऐसे बहुत-से विषयों में श्रास्था रखता है मी श्रात्मा, स्वर्ग-नरकादि श्रदृश्य वस्तुश्रों में ग्रनास्या रखता है कोई भी व्यक्ति एकान्त रूप से श्रास्तिक या नास्तिक नहीं होता । किन्तु आस्तिकवाद श्रोर नास्तिकवाद का वाद के रूप में जो प्रचलन है, वह उपरोक्त सामान्य ग्रयं से सम्वन्धित

और विशिष्ट घटनाओं का, इस जन्म में बालक को जाते की देश और निवेशों की घटनाएँ कई महीनों तक नकता प्रकाशित होती रही कि जिन्हें संप्रह कर प्रकाशित हि जाय तो एक स्वतन्त्र पुस्तक बन सकती है प्रोर कुछ वर्षी तो इस विषय में खोज भी होने लगी है।

मृताःमायों से सम्पर्क साधने की वार्त भी प्रकार्त वा चुकी हैं। 'नवमारत-टाइम्स' के रिवचारीय मंहिंदी जुलाई ६४ से अक्टूबर तक के अंकों में उनका प्रकार्त हैं हुया है और उनके आधार पर स. द. ५-१०-६५ में पृ. ४६३ में लिखा भी है। पूर्वभव मानने पर पुनर्भव मति वाप स्वीकृत हो जाता है, क्योंकि वर्तमान भव, पुनर्भव मोर मृतात्माओं से सम्पर्क भी पुनर्भव को मान्य कर रहा है।

वास्तव में जीव समर एवं अविनाशी है, प्रविक् इसकी स्रवस्थाएँ परिवर्तनशील हैं। कृत-कर्मानुसार गरी इन्द्रियादि का संयोग होता है, सुख-दु:ख का स्रवुभव होती है और स्थिति पूर्ण होने पर मरता है—वर्तमान शरीर की छीं कर नवीन गरीर धारण करता है।

जीवों की विभिन्न गितयां, जातियां सुख-दुःख आदि देखें से भी यह मानना पड़ेगा कि वे पूर्वकृत कमों का द्युमादान इन भोग रहे हैं। एक ही पिता और माता से उत्पन्न दो, चार वी पाँच पुत्रों के सरीर के वर्णादि, शरीरवल, इन्द्रिगवल त्वी बृद्धिवल सम्पन्नता-विपन्नता और सुख-दुःख की विभिन्नता एवं

मोजनोजार करो भगोतील जनसाची रदास है, अधारी का तीत जमा से हता है। इनस्ता, पोनामाप नान-पन्नान में भी घटनायाया हा क्या बन्ता प्र है। इपय कोई भी बाजा एक पुरुष समय भी विक्रिय रह सहती। यह आध्यल्यर हिला अवस कह नासे स्ती इससे भार-कर्म ताता र ता है। इस भार-कर्म के प्राक्षेत्र त्रभानकमं । मंगाएं जा कावत हो कर आहमा स समानित जाती है। जम यहाँ उसका कलांगन है।

मोदे रूप से जो र, प्रपनी विभिन्न इतियों हा ही जै को कत्ती मानता है। जैस-" मैन यह भवन बनाया, मी सरीदी, धन कमाया, विवाद किया, सन्तान उलक्षकी, है बाग-बगीन, जूर्त, धर्मशाला और मन्दिरादि जनाये, भैंने प्र रचना की, मैने संकड़ों काव्य रने, महाकाव्य रने।' इस प्रक मनुष्य अपने को कत्ती मानता है। किन्तु इनके सिवाय वह श्रपने लिए शुमाशुभ कमें का सर्जन करता है। भाषी सुर दुःख के निर्माण की नींच रहा कर चयन कर रहा है इसन उसे ज्ञान ही नहीं है । यह जीव का अज्ञान है ।

कमं करने से ही होता है। किसान खेत में से धा आदि की फसल लेता है, यह कत्ती बने विना नहीं ले तकता वह खेत में बीज बोने और सींचने ख्रादि के रूप में कर्ता वन ही है। किसी कमं का कत्तापन प्रत्यक्ष होता है भ्रोर किसी परोक्ष । प्रत्यक्ष कर्तापन को जीव स्वीकार कर लेता है, किंग

जीव कर्म-फल का भोकता है

जीव एक स्वतन्त्र द्रव्य है, शादवत है और ग्र^{च्छे-तृर} का कत्ती है। इतना मान छेने के बाद जीव को कर्म के की भोग करने वाला भी मानना ही चाहिए। जीव कर्ता^{ती} परंतु भोनता नहीं हो, यह कैसे हो सकता है? किन् मनुष्य कुश्रद्धा या अश्रद्धाजन्य तर्क के चवकर में पड़ कर फल का भोग नहीं मानते । किये हुए कार्यों के प्रत्यक्ष देने वाले फल को तो वे स्वीकार करते हैं, जैसे—ग्रीपधी से रोग-निवृत्ति, विप-मक्षण से प्राणनाण, भोजन करने से क मिटना, पानी पीने से प्यास मिटना, गरम वस्त्रों से बी निवारण श्रोर चोरी, जारी, हत्या आदि के फनस्वरूप दर्ग भोग श्रादि प्रत्यक्ष दिखाई देने वाले कमं-फल तो नािती और कुतर्की भी मानते हैं, किंतु परोक्ष-कर्म पूर्व-भवों में कि हुए कमी का भवान्तर में होने वाले फल को वे लोग ही मानते । यही विवाद का विषय है भीर यही उनकी मूल है। वे परोक्ष कार्य के प्रत्यक्ष फल से भी इन्कार नहीं कर सकते। जैसे — किसी ने भोजन, दूध या दवाई में विष मिलाकर किसी को खिला दिया। यह विप-दान खाने वाले ने या और किरी अन्य ने नहीं देखा, किंतु जब उस अदृश्य कार्य का कल प्रत्यही हुआ, तब वे मान गए कि इसे किसी ने विष दिया—विष दे कर मार डाला है। इस प्रकार परोक्ष कार्य का प्रत्यक्ष ^{कुई}

कुल की रूप-सुन्दरियाँ राजा-महाराजा या कोट्याग्रि^{ति ।} प्रेम-पात्री बोर लक्ष्मीदेवी सी वन कर, एक रानी के स वैमयशालिनी हो जाती यो । इस प्रकार विना चोरी, उर्ज कालावाजारी आदि के भी धनवान वन जाते हैं। इन वर्ष तो खेती भी धनवान बनने का साधन बन गई। साहुकारों व्याज देने वाले, उलटे साहुकारों से व्याज लेने वाले ही गर यह सब पुण्योदय के प्रभाव से हुआ। जिनके पाप का उ रहा, उन्हें या तो उपयुक्त साधन नहीं मिला, या बीज नाव मिला, जमीन खराब हो गई, वर्षा न्यूनाधिक हुई, की है सा सा गए, या फसल चोर ले गए। किसी भी निमित से हार्वि (गई। हमने देखा है-एक खेत बाले के फसल अच्छी हैं^{ती है} तव उसके पड़ांस बाला खेत कमजोर है। उसकी फमल अ है। इनमें बाहर दिखाई देने बाले निमित्त ही सब्हु है होते, आभ्यन्तर कारण भी रहता ही है। वह ब्राम्बन्तर हा गुभाश्म कमी का उदय है।

यभी पलु का प्रकोप हुआ, घर में ५-७ व्यक्ति भूत हैं। उनमें ने कह्यों की पलु का कट्ट भोगना पड़ा। पूर्व एक की और फिर दूसरा-तीसरा, इस प्रकार पलु गृहिन्ति की लगने लगा। किन्तु घर में एक या दो मनुष्य ऐने भी भी किन्दे पलु ने स्पर्ध ही नहीं किया। छीत का बाह्य विवित उपाय्य रहें पर भी ने प्रप्रभावित रहें। इसका मुख्य होते पहीं कि उनके उस समय असानविदनीय-कर्म हा उसा ही



ज्ञानावरण का उदय ? कितना अन्तर है इनमें ? श्रुवकें महात्माओं के भी ज्ञानावरणीय की पांचीं प्रकृतियों का द रहता है, किर भी वे कितने ज्ञानी हैं ? श्रुत-सागर के प गामी उन महात्माओं के ज्ञानावरणीय कर्म का कितना प्री क्षयोग्यम श्रीर निगोद के जीव का कैसा प्रगाइतम उदय ?

चक्षुदरांनावरण का उदय निगोद के जीवों के बी बीर मनुष्यों के भी, किन्तु अन्तर कितना ? एकेन्द्रिय से है द्रिय तक के जीवों के लिए सर्व वाती ग्रोर चौरीन्द्रय पंचित के लिए देशवाती । इसमें भी बहुत ग्रन्तर है । किसी के प्र होते हुए भी दिलाई नहीं देता और किसी को बहुत कम दिल देता है। किसी पक्षी की दृष्टि मनुष्य से भी अधिक तेज हैं। है । क्षयोपनम और उदय को विचित्रता देखिये कि कभी ^{उर} विशेष, तो कभी क्षयोपशम भी विशेष होता है। क्षयोपशम वी श्रंजन या चरमे का निमित्त पा कर देख सकते हैं ग्रीर ऐ क्षयोपग्रम वाले के उदय का जोर हो, तो चश्मा टूट-फूट सो जाता है। फिर उदय का जोर कम हुम्रा कि सोया हुं। चयमा मिल जाय । दुविन प्राप्त कर विशेष सूक्ष्म या ग्रिवि दूर की वस्तु देख सकते हैं। अन्तर मृहूर्त में उदय ग्रीर अन म्हूर्तं में क्षयोपशम होने योग्य कमं भी होते हैं। तात्प्यं म कि उदय का मन्दतम रस भी होता है बीच तीव्रतम भी, प्री स्यिति जघन्य काल की भी होती है और उत्कृष्ट काल के भी । उदय स्थान भी अनन्त होते हैं ।

हो कर मृत्तित हो जाती है।

श्रातम-शुद्धि का मूल--तत्त्वत्रयं

पत्ते, पुरप, फल और वीज उत्पन्न ग्रीर नष्ट हो पुनः उत्पन्न ग्रोर पुनः नष्ट—यह परम्परा चल्त है। किन्तु एक दिन ऐसा भी आता है कि वह वृज्ञ है, गिर पड़ता है, या काट दिया जाता है। किर पुष्पादि उत्पन्न नहीं होते । इसी प्रकार भव्य जी कमी ऐसा भी समय बाता है कि उसको बन्ध-स

मनुष्य की वंश-परम्परा कव से हैं ? एक वंग-परस्वराकव से चली ? क्या इसका पताच है ? नहीं, गास्त्रों के प्राधार से यह तो कहा जा नक मनुष्य अकर्मनृमित्र से कर्ममूमित हुआ, किन्तु है समय नहीं रहा कि जब मनुष्य का ब्रस्तित्व था ही न उनहीं उताति नई ही हुई हो। वास्तव में मनुष्य ही नी अनादि है प्रोर बंग-बेल अनादिकाल में बली र इन रान्चार या अधिक ने अधिक दनन्योन पोड़ी के हुं तान भारतम हार महते हैं। उसके प्रामे का नहीं। कि

ता निहिचन ही है कि उनमें पूर्व भी प्रवास पूर्व के हेन्द्र हा हो गुनान थे। इस बनार बंग-बेटि प्रवादि था रही है। हिर नी इन हो छेरन हीता हम देवते हैं।

इत्य के कार्र जनावन हो। नहीं दूरी या हा कर महत्र रह र १ र च्या पहें। प्रमाण हो। जाती है। प्रसादि ह र हो का का कार्य के दूध है जिल्लाहरू

छोकाम का सिद्धस्यान है। मुन्तारमा वहीं पहुँच कर सा मपर्यवसित रहती है--मांशा निश्चल, परम स्थिर।

नास्तिक लोग मुनित नहीं मानते हैं, किन्तु 🤋 मास्तिक भी मुक्ति नहीं मानते । उनकी युव्टि में मुक्ति ए कल्पना मात्र है। एकेस्वरवादियों में से कुछ में मुक्ति ^व मान्यता है, किन्तु स्वरूप के विषय में भ्रम है। वे एकेश्वरवि लोग, मुनतात्मा को भी ईपवर से कम दर्ज पर मानते हैं श्री दयानन्द सरस्वती ग्रादि तो मुक्तात्माओं की पुनरावृति भं मानते थे। विश्वभर में मात्र एक ही त्रह्म मानने वाले अद्वैत वादी के मत से तो मुक्ति का प्रश्न ही नहीं उठ सकता। जब एक त्रह्म के सिवाय दूसरी कोई आत्मा ही नहीं, तो मुन्ति किसकी हो ? आत्मा को कूटस्थ, ग्रपरिणामी एवं उत्पाद-व्यय-रूप पर्यायों से रहित मानने वाले मत में मुक्ति की मान्यती भी कैसे घट सकेगी ? उस मत में न तो बन्धन घट सकेगा, न मुक्ति हो। बौद्ध-मत की स्थिति विचित्र है। वह ग्रात्मा की नहीं मानता । रूप, वेदना, विज्ञान, संज्ञा श्रोर संस्कार, इन पांच स्कन्धों के समूह से उत्पन्न होने वाली शक्ति को ग्रात्मा अयवा विज्ञान कहता है और इसे भी प्रतिक्षण नष्ट होने वाला मानता है। फिर भी वोधिसत्व के भव एवं पुनर्जन्म स्वीकार करता है। निर्वाण मान कर भी युद्ध को संसार के निर्वाण के लिए प्रवृत्ति-रत मानता है। जहां श्रात्मा की प्रवृत्ति शेष रहे जाती है, वह मुनित ही कैसी ? प्रवृत्ति होती है—योग है

अपना उत्यान कर छेता है।

नय स्वरूप

मेरा वक्तव्य

श्रुतज्ञान, नय युवत होता है। श्रुत के प्रमाण से विषय किये हुए पदार्थ का किसी अपेदाा से कथन करना, दूसरी अपेदाओं का विरोध नहीं करते हुए, अपनी दृष्टि के प्रनुसार अभिप्राय व्यवत करना—नयवाद है।

प्रत्येक वस्तु में प्रनन्त धर्म रहे हुए हैं। उन प्रनत्ते धर्मों में से किसी एक धर्म की मुख्यता से जानने वाला ज्ञान, 'नय ज्ञान' कहलाता है। नय, प्रमाण का एक ग्रंश होता है।

'जितने वायय उतने ही नय'—इस प्रकार नय के अनेक भेद होते हैं। और ये श्रनेक नय 'सुनय' और 'दुनंय'— ऐसे दो भेद में वॅट जाते हैं।

जो नय सम्यग्दृष्टि पूर्ण हो, जिसमें ग्रिमिप्रेत नय के श्रितिरिक्त दृष्टियों का विरोध नहीं होता हो, ग्रीर जिसमें विषमता नहीं हो—वह 'सुनय' कहलाता है। इसके विषरीत जो ग्रिमिप्रेत दृष्टि के अतिरिक्त सभी दृष्टियों का विरोध करता हो, जिसकी विचारधारा में विषमता हो, ऐसे मिथ्या दृष्टि पूर्ण, एकान्तिक ग्रिमिप्राय को 'दुनैय' कहते हैं।



सम्यग् एकान्त से युक्त है, इसमें मिथ्या एकान्त को स्या नहीं है।

वस्तु को सही रूप में विभिन्न दृष्टियों से समझा के लिए अनेकान्त एक उत्तमोत्तम सिद्धांत है। इसे संशयवा कहना भूल है, खोर इसका दुरुपयोग करना मिथ्यात्व हैं आजकल अनेकान्त का दुरुपयोग करके भ्रम फैलाया ज रहा है। यह मिथ्या प्रयत्न है।

वस्तु को विविध अपेक्षाओं से जानने के लिए अनेकांतवार उपयोगों है, किंतु आचरण में अनेक दृष्टियां नहीं रहती। वहीं तो एक लक्ष्य,एक पय, एक साधन, एक आराध्य और एकाप्रता ही कार्य-साधक बनेगी। यदि संयम पालन में एक लक्ष्य नहीं रहा और आचरण में मनेकान्तता अपनाई, तो लक्ष्य की सिंदि नहीं हो सकेगी। अनेकान्त के नाम पर मिथ्यात्व, मिबरित असाधुता और ध्येय की विपरीतता नहीं चलाई जा सकती। हैय, हेय है, उपादेय की विपरीतता नहीं चलाई जा सकती। हैय, हेय है, उपादेय, उपादेय है। मनेकान्त के नाम पर हेय को उपादेय बताने वाले विचार स्वीकार करने के योग्य नहीं है। एक की आराधना ही सफलता प्राप्त करवाती है। गृण-स्यानों को चढ़ कर और श्रेणी का आरोहण कर, वीतराण सवंज्ञ-सवंदर्शी तथा सिद्ध दशा वे ही प्राप्त कर सकते हैं—जो अपने ध्येय में दृढ़—निश्चल रह कर प्रगति करते हैं।

अनेकान्त के नाम पर "सर्व-धर्म सवभाव" का प्रवार करने वाले भ्रम में हैं। वर्त्तमान में कई वक्ता ग्रीर लेखक,



जैनदर्शन और तिज्ञान

जैनदर्गन निरूपित तस्य अद्वितीय अजोड़ और मर्थेपिर हैं, में हैं। नयोंकि कि इसका निरूपण परम बीतरागों सर्वज्ञ-सर्वदर्शी जिनेक गवतों ने किया है। इस पर हमें वृद्ध अद्धा है, पूर्ण विश्वास है। इस परीक्षा करने का सम्यग्द्धियों के मन में तो कोई प्रश्न ही नहीं उठती संसार में ऐसी कोई कसीटी ही नहीं, जिस पर इन तस्यों को परधा उसके। परन्तु भौतिक-विज्ञान के विकास से प्रकाण में आई कुछ वातों कई जैनी भी प्रभावित हैं। उनकी इनमगाती श्रद्धा की स्थिर एवं सुई करने के लिए, यहाँ कुछ पूष्ट, सम्यग्दर्शन में प्रकाशित कुछ लेखों पर दिये जाते हैं, जिन में बैज्ञानिक निर्णयों से जैनतस्वज्ञान एवं बाग मिक विज्ञान की सरयता स्पष्ट दिखाई दे रही है। वैज्ञानिकों की भौति शोध भी बधूरी एवं एकांगी है। उन्होंने जो कुछ जाना-देखा है, विश्व खांणिक ही है और आरिमक एवं बरूपी पदार्थ को खोजने में तो वे सर्वया बसमर्थ ही रहे हैं।

व्याख्याता महानुमानों को इस निषय को ठीक समझ कर स्रोताओं को समझाना च।हिये। इस लेखमाखा के लेखक हैं;—

(श्री कन्हेयालालजी लोढ़ा, एम. ए.)

वत्तमान युग विज्ञान का युग है। इसमें प्रत्येक सिद्धांत विज्ञान के प्रकाश में निरखा-परखा जाता है। विज्ञान की कसीटी पर खरा न उत्तरने पर उसे बंधविश्वास माना जाता

घ्यनि के द्वारा जसंस्य योजन क्षेत्र में रहे हुए असंध्य देवन्दी को इन्द्र का आदेश सुनाता है कि—

"भरत क्षेत्र में तीर्थं हर भगवान् का जन्म हुआ इन्द्र महाराजा जन्मोत्सव मनाने के लिए भरतक्षेत्र विनिता नगरी जाएंगे। स्रतएव सभी देव उपस्थित होवें।"

जब दन्द्र की सुधोपा घंटा बजती है, तो पृथक्-पृष् लाखों विमानों में रही हुई छोटी-छोटी घंटाएँ भी बजने लग हैं, जिससे सभी देव-देवी स्तब्ध रह जाते हैं, फिर उन घण्टा के नाद से निकला हुआ आदेश मुनते हैं।"

ऐसा ही उल्लेख 'रायपसेणी सूत्र' में भी है। आजक की ब्राडकास्टिंग स्टेशन और रेडियो से भी ये अत्यधिक शक्ति शाली हैं।

विना वायुयान आकारा गमन

चारित्र-साधना से प्राप्त ग्रात्म-सामर्थ्य से महात्मा कुर क्षणों में आकाश में उड़ कर हजारों-लाखों माइल दूर पहुँच जाते थे—विना किसी वाहन के। 'विद्याचारण जंघाचारण छिव्धि' की यह शक्ति थी। ग्राज का वायुयान उसकी किसी समानता में नहीं ग्रा सकता। ग्रीर विद्याधर तो विद्याचालित वायुयान से ग्राकाश में गमनागमन करते ही थे।

भारमा और पुद्गल की गमन-शक्ति—एक समय में श्रसंस्य योजन पहुँचने की क्षमता जिनागम में वर्णित है।

का मांगिळिक दिन है। प्राज भी अनेक विद्वान राज्य उपस्थित हैं। नागरिक-जन भी बहुत बड़ी संख्या में देखने और समजने के लिए उपस्थित हैं। महारा प्रधानमन्त्री भी पधार कर आसन पर बैठ गए। मह प्रधान मन्त्री से पूछा;—

"महामात्य! याज णास्त्रायं किस विषय पर ह "महाराज! इस समय लोगों में 'प्रारब्ध 'पुरुपायं' चर्चा का विषय बना हुआ है। कुछ लोग । कि—सुख-दु:ख, जीवन-मरण, लाम-प्रलाम, जय-पराजय, अपकीति, सुकृत्य-दुष्कृत्य और धर्म-प्रधमं ग्रादि द्वन्द, प्रारब्ध के श्रनुसार ही होते हैं। कुछ लोग कहते 'प्रारब्ध (कमं) से कुछ नहीं होता, जो कुछ होता है पु से ही होता है। पुरुपायं तो प्रारब्ध को भी पलट सकता कुछ 'काल' को महत्व दे कर अन्य को उपेक्षित करते हैं स्वमाववादी हैं श्रोर कई नियतिवादी हैं। इस प्रकार वि वाद संसार में चल रहे हैं। इन वादों पर विचार क निणंय करना श्रावश्यक है। श्राज यही विषय शास्त्राय्याया है।"

राजा ने कहा—"विषय तो बहुत ग्रन्छा नुना है ग्रापने । इन विषयों के शास्त्री कौन-कौन हैं ?"

महामन्त्री ने राज्य-पण्डित से कहा—"पण्डितर्ज आप शास्त्रियों का परिचय दीजिये।"

पक्ष कुशलतापूर्वक उपस्थित करेंगे। इनके शास्त्रार्थ पहले में अन्यत्र हुए हैं, परन्तु सभी अनीणित रहे। स्राज इस समा है ये निर्णायक चर्चा करने के लिये उपस्थित हुए हैं। अब इन्हें स्रपना-स्रपना पक्ष स्थापित करने की आज्ञा प्रदान करें?

कालचन्द्र का कौराल

राज्य-शास्त्री के बैठने पर महामात्य ने कालचन्द्र की सम्बोधित करते हुए कहा—"क्यों भाई कालचन्द्रजी ! जो कार्य प्रारब्ध श्रयवा पुरुषार्थ से सम्पन्न होते हैं, उन्हें आप काल का ही परिणाम कैसे कहते हैं ?"

्रत्रव कालचन्द्र खड़े हुए और अपने सिद्धांत का परिचय देने लगे; —

"महाराजाधिराज, महामन्त्रीजी, पण्डित-प्रवर एवं समस्त समाजन! काल महावली है। काल की प्रक्ति पा कर ही स्वामाव, पुरुषायं, कमं ग्रीर नियति सफल होती है। काल की उपेक्षा कर के तो कोई टिक ही नहीं सकता। एक मनुष्य ने बहुत मुकुत्य अथवा दुष्कृत्य—पुण्य अथवा पाप कर के शुन अथवा प्रश्नुम कमं रूप प्रारच्य सम्पादन किया, किन्तु उमे उसी समय—कमं करते समय ही, फल प्रास्त नहीं ही जाता। पदि प्रारच्य आदि में सक्ति होती, तो कार्य करने ममय ही फल दे देते ? परन्तु फल होता है—कालात्तर में। जब काल दे देते ? परन्तु फल होता है—कालात्तर में। जब काल

की भी स्थित होती है। स्थित पूर्ण होने पर पृथकता होती ही है। स्थित भी काल ही है। अतएव समस्त जड़ और चैतन्य पर काल का साम्राज्य अवाध चल रहा है। कम को उदय में लाने वाला ग्रीर उपयुक्त काल तक फल-भीग करा कर मुक्त करने वाला भी काल ही है। विद्येष क्यां कहूँ मनुष्य को संसार से मुक्त करने वाला भी काल ही है, क्योंकि भवस्थिति पूर्ण हुए विना मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता, वह भवस्थित भी काल रूप है और उस काल का में प्रतिनिधि हूँ। पिछतजीने सब प्रथम मेरा परिचय दे कर उचित ही किया है, क्योंकि में पांचों में मुख्य हूँ। इसलिये मेरा सिद्धांत प्रवल है—यह ग्रापको मान्य होगा। में आशा करता हूँ कि ग्राप मेरा सिद्धांत स्वीक करेंगे।"

अपना पक्ष प्रस्तुत कर पं. कालचन्द्रजी बैठ गये।

स्वभावचन्द्र का कथन

कालचन्द्र के बैठ जाने पर महामन्त्री ने स्वभावचन को सम्बोधन कर कहा—"कहो पंडित स्वभावचन्द्रजी! ज काल, प्रारब्ध और पुरुपार्य से ही सभी कार्य सिद्ध हो सकत हैं, तो आप की आवश्यकता ही क्या है? ग्रापके विना कौन-स काम रुकता है ? अपनी आवश्यकता सिद्ध करिये।

स्वभावचन्द्र--"महानुमाव! क्या बाप मेरा सामध्यं नहीं जानते? ये काल, प्रारब्ध स्रोर पुरुषार्थं ही क्या, कोई मी

हैं, मिच्छियं पानी में अपने स्तभाव से ही तैरती है, आकाश में स्वतः उउने का स्वभाव पिक्षयों का है, सर्प पेट वसीटता हुआ सरकता है, गाय-मेंस आदि पशु अपने चार पाँचों से चलते हैं, मनुष्य दो पाँचों से चलता है, यह सब मेरे—स्वभाव के—अनुसार ही है। पशु-पक्षी के बच्चे जन्म लेने के बाद बोलने-चलने लगते हैं, जब कि मनुष्य के बच्चे को बोलने-चलने में वर्ष-दो वर्ष लग जाते हैं। पक्षियों का जन्म अण्डों के रूप में होता है, किंतु मनुष्यों का जन्म गर्भाशय से होता है। पशुग्रों में बन्दरों का स्वभाव कूदने-फाँदने का है, वैसा अन्य पशुग्रों का नहीं है। यह सब भिन्नता स्वभाव से ही उत्पन्न है, काल, प्रारब्ध ग्रादि से नहीं।

वन्न का स्वभाव क्षुद्या शान्त कर के पोपण करने का है, पानी प्यास बुझाता है, वटवृक्ष छोटे-छोटे फल देता है और तुम्बे की लता बड़े-बड़े फल देती है, कदिल के पुष्प नहीं होते, नीम में कडुआपन, गन्ने में मिष्टता, विप में मारकता, मिदरा में मादकता, मीढल में बमन कराने का और सनाय (सोना-मुखी) में विरेचकता आदि सभी अपने-अपने स्वभाव के अनु-सार ही कार्य करते हैं। अपने स्वभाव के विरुद्ध किसी से कोई कार्य करवाने की शवित किसी में नहीं है।

कई विषयों में देश-स्वभाव भी कार्य करता है। जैसे— आफिका के हिसयों का वर्ण काला, युरोषियनों का गोरा। इसी प्रकार देश-विशेष के लोगों के बाल, अखिं और नासिका स्रादि

सुस्त और दूसरा चालाक, एक सीभाग्यवंत ग्रोर दूसरा दुर्मा स्रोर एक स्वामी और दूसरा सेवक वनता है, तो क्या यह काल के कारण हुआ, या स्वभाव से ? नहीं, इस द्विधा में तो काल कारण बनता है, न स्वभाव ही । क्योंकि इस प्रकार भेद उत्पन्न करने की इनकी शक्ति ही नहीं है। यह शिक मेरी है। मैं ही इस प्रकार के भेद का कारण हूँ। दोनों पुत्र का जन्म-काल समान है। दोनों ही एक ही पिता के वीर्य औ एक ही माता के रज से उत्पन्न हुए हैं। दोनों एक ही माता वे उदर में साथ ही रहे ग्रोर जन्म के पश्चात् दोनों एक ही वातावरण में रहे । इसलिए स्वमाव-प्रभाव भी दोनों पर समान ही हुग्रा इतना होते हुए भी दोनों में इतनी अधिक भिन्नता दिखाई देती है। इस भिन्नता का कारण मेरे सिवाय और कीन ही सकता है ? में दावे के साथ कहता हूँ कि इस मेद का कारण में स्वयं ही हूँ । जिसने पूर्वभव में अच्छे-- शुभ-कर्म किये, उसे उसके मनुकूल ग्रच्छ संयोग मिले और जिसने पापकर्म किये, उसे प्रतिकूल संयोग प्राप्त हुए। सत्य ही कहा है कि— "कर्म प्रताप तुरंग खिलावत, कर्म से छत्रपति पन होई। कमं से पुत्र सुपुत्र कहावत, कमं से और बड़ी नहीं कोई। कमें फिर्यो जब रावण को, तब सोने की लंक छिन में ही खोई। आप बड़ाई करो कहा मूरख, कर्म करे सो करे नहीं कोई"। है। कोई राजा, कोई रंक, कोई रोगी, कोई निरोग, कोई

धनवान, कोई दरिद्र, एक पालकी में बैठ कर चलने वाला,



हैं। एक दीर्घायु होता है, तो दूसरा युवावस्था में ही पर जात है। इस प्रकार के समस्त चमत्कार मेरे ही हैं। मेरे सिवा स्रोर किसी में यह शक्ति नहीं है। में जिस पर प्रसन्न होत हूँ, उसे सभी इच्छित पदार्थ मिलते हैं स्रोर जिस पर मेरे वक्रदृष्टि हो जाती है, वह लुट जाता है, वरवाद हो जाता है राजा को रंक और रंक को राजा बनाने वाला में ही हूँ। में सिवाय ऐसा कीन शक्तिशाली है जो मनुष्य ही नहीं, पश् पक्षियों को भी स्वर्भीय सुख प्रदान कर दे? यदि में किसी के नरक के गहन गर्त्त में धकेल कर घोर दु:ख देना चाहूँ, तो क्य काल या स्वभाव उसे बचा सकेगा?

जीवों को प्राण-शिक्षा में ही प्रदान करता हूँ। एके जिय से निकाल कर पंचे जियम की उच्च-जाति में में ही प्रतिष्ठित करता हूँ और यदि कुपित हो जाऊँ तो पंचे जियम के उच्चामन से पटक कर एके जियम के निगोद के गोले में भी में ही फैस देता हूँ। शरीर स्वास्थ्य, मनोवल एवं बोद्धिक-विकास करने वाला में ही हूँ श्रीच इससे उलट-विनाश भी में स्वयं करते हूँ। मैने बड़े-बड़े बुद्धिमान चतुच श्रीच निपुण माने जाने वाले पर भी समय पर ऐसा चक्कर चलाया कि वे महामूर्ध बने और लोगों में हुँसी के पात्र हुए। मैने कई मूर्सी के हाथों से ऐसे कार्य भी करवा दिये कि जिससे वे लाभान्वत भी दुवे बीच प्रशंसित भी।



हैं। एक दीर्घायु होता है, तो दूसरा युवायस्था में ही नर जाता है। इस प्रकार के समस्त चमत्कार मेरे ही हैं। मेरे सिवाय भीर किसी में यह शक्ति नहीं है। में जिस पर प्रसन्न होता हैं, उसे सभी इच्छित पदार्थ मिलते हैं भीर जिस पर मेरी वक्तदृष्टि हो जाती है, वह लुट जाता है, वरवाद हो जाता है। राजा को रंक और रंक को राजा बनाने वाला में ही हूँ। मेरे सिवाय ऐसा कीन शक्तिणाली है जो मनुष्य ही नहीं, पशुष्पिक्षयों को भी स्वर्गीय सुख प्रदान कर दे? यदि में किसी की नरक के गहन गर्न में धकेल कर घोर दुःख देना चाहूँ, तो क्या काल या स्वभाव उसे बचा सकेगा?

जीवों को प्राण-णितः में हो प्रदान करता हूँ। एकेन्द्रिय से निकाल कर पंचेन्द्रिय की उच्च-जाति में में ही प्रतिष्ठित करता हूँ और यदि कुपित हो जाऊँ तो पंचेन्द्रिय के उच्चासन से पटक कर एकेन्द्रिय के निगोद के गोले में भी में ही फैसा देता हूँ। शारीर स्वास्थ्य, मनोवल एवं वोद्धिक-विकास करने वाला में ही हूँ श्रीय इससे उलट-विनाश भी में स्वयं करता हूँ। मैने वड़े-वड़े वृद्धिमान चतुर श्रीर निपुण माने जाने वार्लो पर भी समय पर ऐसा चक्कर चलाया कि वे महामूर्खं वने और लोगों में हुँसी के पात्र हुए। मैने कई मूर्खों के हायों से ऐसे कार्य भी करवा दिये कि जिससे वे लाभान्वित भी हुँये बीर प्रशंसित भी।

सद यह समभते होंगे कि कर्मनन्द्र महाकूर और निर्देग हैं किन्तु नहीं, में न तो कूर हूँ और न कृपालु । में विश्व क्या करता हूँ । में एक बीतराग के समान तटस्य रह कर जिसके जो प्रकृति होती है, उसे वैसा ही फल देता हूँ । मुझे ठगने य मुझसे अन्यया करवाने की गायित किसी में नहीं है । में अपने कर्जदारों को लाख ग्रयवा करोड़ वर्ष बीतने पर भी नहीं भूलता । कहा भी है कि—

"ना भुवतं क्षीयते कमं, कल्पकोटिशतेरिष । श्रवश्यमेव भोवतव्यं, कृतं कमं शुभाशुभम्" । ११। — करोड़ों कल्प व्यतीत हो जाय तो भी किये हुए श्रमाशुभ कमों का फल भोगे विना छुटकारा नहीं होता । किये हुए कमों का फल तो श्रवश्य भोगना पड़ता है। युग पलट जाते हैं, राज्यशासन वदल सकते हैं, रीतिर

[े] आगमों ने भी मेरी सत्ता स्वीकार की है। यथा--

[&]quot;कडाण कम्माण ण मोक्ख अस्थि"—किये हुए कर्मी का कत्र भोगे बिना मुक्ति नहीं होती (उत्तरा १३-१०)

[&]quot;कत्तारमेव अणुजाइकम्मं "-कर्म कर्ता का अनुसरण (पीछा) करता है (उ. १३-२३)

[&]quot; कम्मसच्या हु पाणिणो "—प्राणियों के कर्म ही सच्चे हैं। पि (उ. ७-२०)

[&]quot; कम्मेहि नुष्पंति पाणिणा । सयमेव कडेहि गाहड, ना तस्म-हि मुच्चेज्जऽपुदुयं "—जीव अपने कर्म से लिप्त हो कर दुर्धी होते हैं। उन हि कर्मों को भोगे त्रिना छुटकारा नहीं होता । (सूय. १-२-१-४)



128

"शकदाल ! यदि कोई पुरुष तुम्हारे वरतन तोई फीई र नष्ट करे, या चुरावे (और कोई पुरुष तुम्हारी पत्नी वे म संभोग करे) तो क्या तुम उसे दण्ड दोगे"—भगवान प्रशन किया।

"मगवन् ! में उस पुरूँप को मारूँगा, पीर्टुंगा, ठोकरी बोट दूंगा, पाँव तले रोंदूंगा स्रोर बांध कर उण्डे वरसाऊँगा । ता ही नहीं, प्राण भी हरण कर लूंगा"— शकदाल ने स्रावेश ह कहा ।

"शकदाल! तुम श्रपने सिद्धांत के अनुसार उस पुरुष एड नहीं देसकते। वयोंकि तुम्हारे मत से वरतनों का फूटना इसव नियति के अनुसार ही हुग्रा, पुरुषार्थं से नहीं, फिर उस पर कोध वयों करना ग्रीर पीटना भी वयों? ऐसा करके पुमने अपने विरुद्ध आचरण कर के पुरुषार्थं को ही मान्य कर । । अब तुम्हें स्पष्ट रूप से उत्थान कर्म-बल-बीय-पुरुष हार-

ा अब तुम्ह स्पष्ट रूप स उत्थान कम-बल-बाय-पुर्व कर हम को स्वीकार कर लेना चाहिए"— भगवान् ने कहा। शकदाल समझ गया। उसने नियतिवाद त्याग कर व्यं का सिद्धांत ग्रहण कर भगवान् का ग्रनुण।सन स्वीकार और भगवान् का परम भक्त बन गया।

(३) भगवती सूत्र के प्रथम शतक तृतीय उदेशक में-

[ै] उत्यान—कार्यं करने को नहपर होना—उठना । कार्य—इयरः ह्यना, मीचना आदि । बच—शारीहितः माम्बर्यं, वीर्यं —त्रात्मा की मस्य । पुरुषकार पराक्रम—कार्योनिद्धं योग्यः प्रयत्न ।

—सूर्यं पूर्वं में उदय होता है, परन्तु बह भी यदि कभी
पश्चिम में उदय होने लगे। अटल माना जाने वाला सुनेष पर्वत
भी कभी चलायमान हो जाय, ग्राग्न उदणता छोड़ कर शीतल
हो जाय, पर्वत की शिला पर कमल उत्पन्न हो जाय। ये सभी
भनहोनी भी कदाचित् देवयोग से हो जाय, परन्तु भवितव्यता
स्वरूप जो कमेरेखा बन चुकी, वह तो ग्रचल, अटल ही रहती
है। वह किसी भी णवित से ग्रन्यथा नहीं हो सकती।

हे पुरुषार्थं वादी ! वह भवितन्यता—होनहार में ही हूँ। मेरे अटल विधान में परिवर्तन करने की गवित किसी में भी नहीं है। मनुष्य कुछ भी सोच, कितना और कैसा ही प्रयत्न करे, में अपने स्थान पर अटल रह कर आना विधान सफल कर के ही रहता हूँ। मेरे विधान के अनुसार ही फल मिलता है। में पूर्ण रूप से स्वतन्त्र हूँ। मुझ पर किसी का बल नहीं चल सकता।

प्रत्यक्ष में विखाई देने वाले एक जीव के प्रयत्न का फल, में दूसरे की भी दिला सकता हूँ। सपेरे के पिटारे में रहे हुए सपें और चूहे का दृष्टांत तो प्रसिद्ध ही है। एक मूखे चूहें को मिठाई की गन्ध आई, वह भूखा था। मिठाई का पिटारा भीर सौप का करंडिया—वोनों निकट ही रखे हुए थे। चूहा सौप के पिटारे को मेवा मिठाई का भाजन समझ कर काटने लगा। घंटा दो घंटा परिश्रम कर के उस में छिद्र बनाया। परन्तु उसके भीतर बैठे हुए मूखे सपें ने उस चूहे का ही भक्षण

करना। इस प्रकार पुरुपार्थं करने पर ही सफलता मिलती है। विना पुरुपार्थं के पूर्वोवत तीन प्रकार की अनुकूलता भी व्यर्थ हो जाती है। इसलिए उन तीन के साथ पुरुपार्थं का जुड़ना भी श्रावण्यक है। इस समय कालादि तीनों गीण श्रीर पुरुपार्थं मुख्य हो जाता है।

पुरुपार्थं करते हुए भी कभी विच्न उत्पन्न हो जाते हैं, नो दो प्रकार के होते हैं। एक तो वे जो प्रयत्न कर के दूर किये जा सकते हैं, और दूसरे वे जो किसी मी प्रकार नहीं टलते । स्रभ्यास करते हुए किसी रोग ने घर-दवाया और पढ़ाई एक गई, किंतु पुरुषाय से डॉक्टर के पास गये, दबाई ली वौर स्वस्य हो कर अभ्यास चालू किया। एक निराधार विद्यार्थी को छात्रवृत्ति मिलती थी, पुस्तकादि भी किसी की मोर से प्राप्त थे। किसी कारण छात्रवृत्ति बंद हो गई, और पढ़ाई रकने का समय आया, किंतु प्रयत्न करने पर किसी थन्य से सहायता प्राप्त हो गई और पढ़ाई चालु रही। दम प्रकार पुरुषार्थं से हटाये जाने वाळे विघ्न तो पूर्व-कर्मं में माने वाते हैं, किंतु कभी किसी के सामने ऐसे विद्या था कर उट जाते हैं कि जो टल ही नहीं सकते । जैने—परीक्षा देते समय श्रचानक चनकर खा कर गिरना और मुख्छित हो जाना परीक्षा के दिन ही कोई दुर्घटना हो जाना दत्यादि । इसमे परिश्रमपूर्व है किये। हुए अध्याम का कीई परिणाम नहीं निकले भीर अनुनीर्णे ही रहना पड़े । इस प्रकार के विध्व वियोग को

प्रारव्ध (पूर्वकर्म) का विषय अधिकांश सजीव वस्तु से सम्बन्धित है। निर्जीव वस्तु के विषय में तो इतना ही है कि सजीव वस्तु के पूर्वकालीन संयोग (मिश्र-परिणत) ही उसके पूर्व-कर्म हैं। सजीव प्राणीवर्ग यद्यपि इन्द्रिय, प्राण, शरीर, अंगोपांग, गति, जाति, संहनन, संस्थान, जीवन-मरणादि पूर्व-कर्म के अनुसार प्राप्त होते हैं, तथापि कर्मानुसार प्राप्त प्रत्येक शक्ति का विकास तो पुरुषार्थं से ही होता है। शरीर मिला कर्मयोग से, परन्तु शारीर का पोपण, रक्षण ग्रादि नहीं किया जाय, तो उसका विकास नहीं होता। इन्द्रियों की भी रोगादि से रक्षा नहीं की जाय, तो विकास के वदले विनाश होने लगता है। सभी कर्म ऐसे निकाचित नहीं होते कि जो विना पुरुषार्थ किये फल दे ही देते हों। कई कमी का उदय संयोगाधीन होता है, कई देश-काल के स्वभावाधीन होते हैं भौग कई कमी का उपशम, संक्रमण, उद्वर्त्तन, अपवर्तन हो सकता है। इसलिए पूर्वकर्म की मर्यादा भी अनुल्लंघनीय नहीं है।

कुछ लोग यह सोच कर कि—"कर्म में लिसा है, वहीं होगा। इसमें न्युनाधिक नहीं हो सकता।" इस प्रकार कर्म को स्वतन्त्र कारण मानने की भूल करते हैं। इससे प्रनर्थ भी हो सकते हैं। कर्म को स्वतन्त्र कारण मानने वाले, पुरवार्य छोड़ कर आलसी एवं अकर्मण्य बन सकते हैं और धर्म-कर्म से अप्ट हो सकते हैं। वे प्राप्त संपत्ति एवं अस्ति क्षों देते हैं। भीर जो लोग कर्म-कारण का सबैया नित्रेध करते हैं, कर्म-मन

है। यद्यपि नियति का समावेश पूर्वंकर्म में हो सकता है, परन्तु पूर्व-कर्म का अधिकांश भाग पुरुषार्थ के स्रधीन होने के कारण निकाचित कर्म को नियति के सन्तर्गत रखा गया है, क्योंकि यह पुरुषार्थ की सत्ता से बाहर है।

यद्यि एक कार्य साधने में प्रनेक वस्तुओं की आवश्य-कता होती है। उन सब की गणना की जाय तो अनेक कारण ही सकते हैं, परन्तु उन सब का समावेश इन पांच कारणों में ही सकता है। इन पांच कारणों का भी 'संग्रह नय' से संक्षेर किया जाय तो काल, पुरुषार्थ के संयोग में, नियति पूर्वकर्म में और प्रारन्ध (कर्म) भूतकालीन पुरुषार्थ में मिल कर स्व-भाव और पुरुषार्थ ये दो ही मुख्य कारण रहते हैं।

महामन्त्री, महोदय ! मेंने अपनी बुद्धि के अनुसार पांच कारणों का यित्कंचित् पृथक्करण करके योग्यायोग्य का विचार किया है। श्राप स्वयं सत्यासत्य का निर्णय कर के इन वादियों को न्याय प्रदान करें। यही मेरा निवेदन है।

महामन्त्रीजी राजेन्द्र से निवेदन करने के लिए खड़े हुए और बोले; —

"महाराजाधिराज। पंडितजी ने पांचों कारणों की जो समीक्षा की, वह उचित है। अब इसमें विशेष विचार करने की आवश्यकता नहीं लगती। इसलिए इन पांचों को निर्णय प्रदान करने की कृपा करें।

ी गोणता है। अचानक अकस्मात (घटना विशेष में) नियति

ी प्रधानता और श्रन्य की गोणता है। वस, इसी प्रकार

त्येक वादी श्रपने-श्रपने विषय में प्रधानता श्रीर अन्य के

पय में श्रपनी गोणता स्वीकार कर के गर्व और श्रधिक वाद

त्याग करदे बीर एक-दूसरे का वल स्वीकार करें।

समी समासद श्रीर वादीगण महाराजा की जय बोलते

प्रणाम करके चले गये। (सभा विसर्जित हुई)

अपने विचार

उपरोक्त निर्णय का अनुवाद लिखते समय मेरे मन ो विचार उत्पन्न हुए, उन्हें भी में पाठकों के विचारार्थ त करना उपयुक्त समझता हूँ।

पंडितजी के पर्यालोचन और महाराजा के निणंय में कार्य में पाँचों कारणों का सम्बन्ध स्वीकार करते हुए ह्यता-गोणता और नियति के क्षेत्र को संकुचितता बताई ह कदाचित् व्यावहारिक दृष्टि से होगी और नियति की तता भी बड़ी घटनाओं की दृष्टि से बताई होगों। पाँचों कारणों का प्रत्येक कार्य की निध्यति में योग उचित है, और सभी का क्षेत्र भी समान है। कार्य में सास्मूल, द्योटा हो या बड़ा, मेरी समफ से पांचों की ति अनिवार्य छगती है।

नियति का काम भी दोनों प्रकार का है-जो हना

४ नियां भ्योत हलता—उन महात्माओं का अयत्न इम भागमान्त्र हो, इस अन्तर हो नियति नही थी। उनकी दे। प्रोर मनुष्य भन पुनः करना ही हीता है। इसलिए उस भव में सिद्ध नहीं होते।

दस प्रकार किसी भी कार्य की सफलता-निक्कलता में पंची का सम्मिलित होना और अनुकूल-प्रतिकूल रहना उचित लगता है। इतन होते हुए भी मन्द्य की चाहिये कि पूर्वार्य को मुर्यता देकर सम्यक् प्रयत्न करता रहे । छद्मस्य मनुष्य मयितव्यता नहीं जान सकता। इसलिए उसे ग्राहम-शुद्धि का प्रयत्न करते ही रहना चाहिये। उसे नियति के भरोसे प्रमादी नहीं बनना है । छद्मस्य मनुष्य के लिये व्यवहार (पुरुपार्य) प्रथम स्थान रखता है और केवलज्ञानी के लिये निश्वय (नियति) प्रथम है। अतएव सम्यग् पुरुषार्थं करना ही हितकारी है।

श्राचार्यं श्री हरिभद्रसूरिजी ने उपदेश-पद गा. १६४ में कहा है कि-

"कालो सहाव-नियई, पुव्वकयं पुरिस-कारणेगंता। मिच्छत्तं ते चेव उ, समासओ होति सम्मत्तं।"

--काल, स्वभाव, नियति पूर्वकृत-कर्म, ग्रीर पुरुवकार, इन कारणों को एकान्त रूप से प्रत्येक को अकेला कारण माने तो वह मिथ्यात्व है, और इन में से किसी को भी नहीं छोड़ कर सभी को साथ--एकत्रित मानना सम्यक्त्व रूप होता है।

चारित्र-मोहनीय के अनन्तानुबन्धी कपाय-चतुष्क के सतत-सहयोग की श्रावश्यकता है। मोहराज का महासेनाधिपति मिथ्यात्व-मोहनीय है, तो उसका प्रवलतम गस्त्र—चक्र-कुदर्गन-अनन्तानुबन्धी है। दोनों का अविनाभावी सम्बन्ध है । इनका साय कभी छुटता ही नहीं । हां, यह हो सकता है कि कभी अन्य चोकड़ी की प्रवलता में इसका प्रवाह मंद हो जाता हो । देवलोक एवं ग्रैवेयक में रहे हुए प्रथम गुणस्थानी देव के संज्वलन चोक का विशेष उदय हो स्रोर उसके वेग के स्रागे अनन्तानुबन्धी का प्रवाह दव जाता हो । जैसे महानदी में आई हुई वेगपूर्वक वाढ़ के समय नाले का वहाव कुछ रक जाता है, उसी प्रकार संज्वलन के प्रवाह में ग्रनन्तानुबन्धी का प्रवाह मंद हो जाता है, परन्तु मिथ्यात्व तो अक्ष्ण रहता है और ग्रनन्ता-नुबन्धो के विना मिथ्यात्व टिक ही नहीं सकता। जब सादि-सपर्यवसित सम्यवत्व छूट जाता है, तो सब से पहले ग्रनन्ता। नुबन्धी की चोकड़ी सिर उठा कर खड़ी होती है (गुणस्थान र में) ग्रोर उसके वाद (उत्कृष्ट छह ग्रावलिका में) मिथ्याख के कारागार में भ्रात्मा पहुँच जाती है।

अनन्तानुबन्धी की परिभाषा करते हुए स्थानांगस्^{त्र} ४-१ में टीकाकार श्री अभयदेवसूरिजी बतलाते हैं कि--

"अणंताणुबंधी—अनन्तानुबन्धिन्—पुं. अनंतं संसारं भवमनुबध्नाति अविच्छिन्नं करोतीत्येवंशीलोऽ-नन्तानुबन्धो यस्येत्यनन्तानुबन्धी । सम्यण्दर्शन सह-

और उग्र कपायी होने का प्रसंग ही नहीं याता। वे एकदम मान्त होते हैं। उनकी गुक्ल-लेश्या भी नीचे के वैमानिक देवों से अधिक उज्ज्वल और प्रमस्त होती है, किन्तु उनमें भी प्रयम-गुणस्यानी अनन्तानुबन्धी के पात्र हैं।

छठे नरक के नैरियक कृष्ण छेदया वाले हैं और सातथें के उग्रतम कृष्ण छेदया वाले। किन्तु इनमें भी अनन्तानुबन्धी के उदय से वंचित चतुर्थगुणस्थानी सम्यग्दृष्टि भी हैं। जो जीय अप्रत्मास्थानी कथाय के उदय वाले हैं उनके भी कोश्चादि चारों कथाय होती है और उग्र भी होती है। दशाश्रुतस्कन्ध अ. ६ के आस्तिक सम्यग्दृष्टि का वर्णन इस वात को स्पष्ट करता है। वहाँ बताया हुआ सम्यग्दृष्टि कूर है, अत्यन्त कोश्ची है, छोटे-से अपराध का भारी दण्ड देने वाला है और अपन कुकृत्य के फल स्वस्त्व नरक में जाने योग्य है, फिर भी प्रमन्तानुबन्धी के उदय से रहित, अप्रत्याह्यानी कथाय के तीन्न उदय वाले हैं।

जीवों को परिणति विभिन्न प्रकार की है। कई ऐस होते हैं कि समझते सब कुछ हैं, योग्यायोग्य, हानिलाम, पुण्य-पाप बौर हिताहित का विचार भी करते हैं। परन्तु अन उदय-भाव का जोर होता है, तो उप हो जाते हैं। उस ममय के अपने की सम्भाल नहीं सकते। उदयमाय के कारण ही मन्यय-बृष्टि जीव छठे नरक तक इंट्यालेक्या स्रोर सम्बन्ध्य यूना जा सकते हैं (भगवती १३-१) दनके अनुनानुक्या का उदय

जाता है। उसे देर-गाँद संस्ट होगा ही पहला है।

इमिल्यं आस्त-सांच है, प्राहमाथीं का कर्नेट्य है वि मिथ्यात्व एवं प्रवन्तानुबन्धी क्याय को नष्ट करने के लिए जिनेश्वर भगवंत के निर्प्यय-प्रवचन पर दृष्टीभूत-अदृष्ट श्रद्धा रख कर यथाप्रात्व प्राराधना करता रहे। यही इस महापात्र से मुक्त होने का एकमात्र खपाय है।

रद्युनाथ प्रदेल की छाछ

एक छोटा-सा गांव था—सो सवा-सो परों का खिवतर लोग कृपक थे, कुछ मजदूर और वर्द्ध-लृहार आदि रघुनाथ पटेल वहाँ के मुखिया थे। घर के मुखी-सम्पन्न बीर प्रतिष्टित। हृदय के उदार मिलनसार और अतिथि-सत्कार की छिन वाले। श्रच्छी उपजाउ भूमि के स्वामी। गोष्ठ में गायों-मेंसों का झुण्ड श्रीर पर्याप्त हृद्ध-दही-घृत। गांव के कुछ अन्य लोगों के भी दूध होता था, परन्तु रघुनाथ पटेल के सिवाय-सभी निकट के नगर में अपना दूध बेच देते थे। एक रघुनाथ पटेल ही ऐसे थे जो दूध नहीं बेचते, घृत बना कर बेचते थे श्रीर छाछ गांव के लोगों में वितरण करते थे। लोगों को छाछ

एक ही है—"परम वीतराग सर्वज्ञसर्वेदर्शी जिनेश्वर भगवंत म्रादि देव"––"धम्माणं कासवोमुहं" (उत्तरा. २५) ^{इस} ग्रवसर्पिणी के आदि तीर्थंकर भगवान् काश्यप श्री आदिनायजी हैं। उनके पूर्व अकर्मभूमि जैसी स्थिति थी। भगवान् ऋषमन देवजो इस अवसर्पिणी काल के प्रथम महाराजा, प्रथम श्रमण, प्रथम सर्वज्ञसर्वदर्शी ग्रीर प्रयम तीर्थंकर हुए । उन जिनेस्वर भगवंत ने धर्मीपदेश दिया। उनकी वीतराग वाणी रूपी प्रवचन गंगा प्रवाहित हुई, जिसका पान कर के असंख्य ग्रात्माएँ पियम हो कर, अनन्त जीवन पा गई। वह प्रवचन-प्रवाह विभिन्न प्रकार की भूमि में पहुँच कर विभिन्न वर्ण-गन्ध-रस स्पर्श के मिश्रण से---अच्छे-बुरे संयोग से बदलती-पलटती रूपान्तरित रसान्त-रित, गन्धान्तरित हो गई। इस प्रकार विभिन्न मत-मतान्तरों में जो क्वचित् अहिसा-सत्यादि की कुछ वातें सुनाई देती है, वे समी--रघुनाय पटेल की छाछ के समान-जिनेश्वर भगवंत द्वारा प्रसारित निर्यंथ-प्रवचन की ही है। शेप सब दूसरों की ग्रपनी मिलावट है।"

संत वहां से विहार कर आगे पदारे, जहां श्रमणी-पासकों की अच्छी संख्या थीं । संतों के मन में छाछ के निमित्त से गुरुदेद से मिले हुए तत्त्ववीध पर चिन्तन चल रहा था । प्रतिक्रमण के पश्चात् एक शिष्य ने पूछा;---

"गुरुदेव ! रघुनाथ पटेल की छाछ अन्य वरों में जा कर पानी आदि से मिश्रित हो गई, फिर भी यह पी जाती

हो, और धूनी तापने तथा यज्ञादि में असंख्य स्थावर ही नहीं वसजीव भी भस्म होते रहते हों, खान-पान, स्नान-मंजन एवं गमनागमन सभी सदोप हो, हाथी-घोड़े पर चढ़ते हों, राशि भोजन भी चळता हो, ध्रुमपान श्रादि सदोप जीवन अपने-ग्राप दूसरी कसौटी के लिये भी अयोग्य है।

अन्यमतों की अपेक्षा वौद्ध-धर्मी अपने को विशेष अहिसक वतलाते हैं, परन्तु स्थावरकाय जीवों की यतना का विवेक तो वहां भी नहीं है, तथा अनेक प्रकार के सावद्यकर्म एवं आरम्भ वे करते हैं और उनके आराध्य, भक्त का न्योता मान कर अपने सैंकड़ों साधुओं के साथ एक ही घर भोजन करने जाते थे। उनके लिये पशुको मार कर मांस पकाया जाता था और वे खाते थे। वे भी इस कसीटी से अयोग्य टहरते हैं।

तत्त्ववाद — ग्रंतिम ताप रूपी कसीटी तत्त्ववाद है।
जीव तत्त्व की मानने के साथ जीवों का पृथकत्व (अनंत जीवद्रव्य होना) कर्यंचित् नित्य, कर्यंचित् ग्रनित्य, कर्म का कर्ता,
भोवता, विभावदशा के कारण विभिन्न गतियों में भटकने वाला
ग्रोर धमंसाधना से मुक्ति प्राप्त कर शाय्वत सुक्षी होने वाला
जिन शास्त्रों में माना हों, वे इस कसीटी से भी शुद्ध ही प्रमाणित होते हैं।

जीव-तत्त्व को मानते हुए भी जो संसारभर में केवल एक ही ब्रात्मा मानते हों—विभिन्न ब्रसंख्य दारीरों में माथ

अन्य गित के योग्य नारक-पशु देव आदि रूप गित एवं शरीर का परिवर्त्तन होता रहता है। इस प्रकार श्रात्मा का 'पिर-णामी नित्य' होना प्रत्यक्ष है। आत्म-द्रव्य नित्य होते हुए भी पूर्वपर्याय—अवस्था—नष्ट होती और नई अवस्था उत्पन्न होती है। इस प्रकार द्रव्य-दृष्टि से श्रात्मा नित्य होते हुए भी पर्याय दृष्टि से परिवर्त्तनशील है—उत्पाद-व्यय युक्त है।

क्षणिकवादी का तत्त्ववाद भी अनुपयुक्त है। पर्यायों में परिवर्तन होते हुए भी ग्रात्मा नित्य है। जो वालक है, वही युवा ग्रीर वृद्ध होता है—दूसरा नहीं। जो पाप-पुण्य करता है, वही उसका फल भोगता है। करने वाला करते ही नष्ट हो गया ग्रीर भोगने वाला कोई दूसरा ही हो, ऐसा नहीं होता। अतएव क्षणिकवादी का तत्त्ववाद भी कसोटी पर चढ़ने योग्य नहीं है।"

"उपरोक्त सभी कसोटियों से जिनधर्म ही सत्य प्रमा-णित होता है। इसमें सन्देह नहीं होना चाहिये"—श्राचार्य प्रवर श्री गुणचन्द्रजी स्वामी ने समाधान किया।

णिष्य संतुष्ठ हुआ। उपस्यित श्रावकमण की धर्म श्रद्धा दृढ़ हुई।



शेणव अवस्था की चर्या और होती है, तो किशोरावस्था की चेण्टा कुछ श्रोर होती है। इसी प्रकार युवावस्था, प्रोढ़ावस्था बृद्धावस्था की रुचि, कार्यकलाप और परिणति कमणः पलटती रहती है। गृहस्थावस्था की परिणति, श्रमण श्रवस्था में नहीं रहती श्रोर वीतराग बनने पर तो दशा हो अनूठी—अपूर्व बन बाती है।

जिनेश्वर भगवंतों का समस्त जीवन ही लोकोत्तम होता है। उनकी वाल्यावस्था की चेप्टाएँ, ग्रन्य सभी वालकों से निराली तथा उच्च प्रकार की होती है। इसी प्रकार यौवन-काल एवं गृहस्य जीवन भी उच्च होता है और संयमी जीवन तो एकदम निर्दोप एवं पवित्र होता है। वे पूर्णतया निस्संग, एकाकी ग्रीर असंयोगी होते हैं। इस श्रमण जीवन में वे संसारियों से सम्बन्धित नहीं रहते, न संसारियों के जात-पाँत, लेन-देन, सम्पन्नता-विपन्नता और सुख़-दु:ख के भौतिक उपाय पर चिन्तन ही करते हैं। वीतराग सर्वज्ञ होने के पश्चात् ही वे धर्मीपदेश देते हैं। धर्मीपदेश में आत्मा को राग-द्वेप, विपय-वासना एवं कर्मवन्य से रहित हो कर शाश्वत अनंतसुख प्राप्त करने का उपदेश देते हैं। यही प्रवृत्ति सहज रूप से होती रहती है। वे न तो राजनीति का उपदेश करते हैं, न सामा-जिकता का । उनका समस्त त्यागी-जीवन संसार की हलचल, बादविचाद, ऊँवनीच, सम्पन्नता-विपन्नता ग्रीर सूख-दु:ल से मिलप्त, पृथक् एवं निरपेक्ष रहता है। वे संसार से प्रलिप्त

को 'धर्म—जिनधर्म'—कहना असत्य है, भूठ है।

कोई यों भी कहते हैं कि "म. रियमदेवजी ने सुनन्य के साय पुनिवाह किया था।" यह कथन भी सर्वथा मिथ्य है। सुनन्दा कुमारिका थी, ग्रक्षत कीमार्य युक्त थी। न ते वह विधवा थी और न परित्यक्ता ही। उसका किसी से सम्बन्ध या संभोग हुग्रा ही नहीं था। उसका सहजात वालक अपने वचपन में ही मह गया था। उसे विधवा मानना सरासर झूट है और अज्ञान, कुश्रद्धा तथा मोहोदय का कुपरिणाम है।

कई कहते हैं— भगवान् अछुतों की दशा देख कर तिलिमला उठे। उन्होंने समाज-सुघार का वीड़ा उठाया और जोर-शोर से कहा—"कम्मुणा वंभणोहोई......सुद्दों हवड़ कम्मुणा"। यह एक सिद्धांत की वात है। इसका ताल्पं यह तो नहीं हो सकता कि भगवान् ने अछुत्तोद्धार का वीड़ा उठा कर समाज को वदलने में जुट गये? इसी प्रकार 'स्त्री-वगं की दुर्दशा देख कर भगवान् ने विद्रोह कर दिया'—यह कथन भी निराधार श्रोर मिथ्या है।

इस प्रकार जितने भी कुप्रचार होते हैं, वे मिथ्या है श्रोर अनजान लोगों को भ्रम में डाल कर पथ-भ्रष्ट करने के लिये होते हैं। ऐसे अन्यया-वादियों से सावधान रहना चाहिए।.

भगवान् के जनमकल्याणक पर इस प्रकार के जितने भी भ्रम फैलाये गये हैं, उनको मिथ्या मान कर कुश्रद्धा ह्यी पाप से अपनी आत्मा की रक्षा करनी चाहिये।

सन्मित गाट्द का कितना भी महान् ग्रर्थ क्यों न हो, वह केवल ज्ञान की विराटता को ग्रपने में नहीं समेट सकता। केवल ज्ञान के लिए सन्मित नाम छोटा ही पड़ेगा, ओछा ही रहेगा। केवल-ज्ञानी की महानता व्यवत करने में समर्थ नहीं हो सकता जिनको वाणी एवं दर्शन ने ग्रनेकों की शंकाएँ समाप्त की हीं ग्रनेकों को सन्माग दिखाया हो, सत्यय में लगाया हो, उनकी महानता को किसी एक की गंका को समाप्त करने वाली घटना कुछ विशेष व्यवत नहीं कर सकती।

बढ़ते तो श्रपूर्ण हैं, जो पूर्णता को प्राप्त हो चुका ही, उसे 'वर्द्धमान' कहना कही तक सार्थक हो सकता है। इसी प्रकार महावीर की वीरता की सांप श्रीर हाथी वाली घटनाओं से नापना कहाँ तक सम्भव है, यह एक विचारने की बात है।

ययि महाबीर के जीवन सम्बन्धी उनत घटनायें दाक्ष्रों में विणत हैं, तथापि वे वालक वर्द्धमान को वृद्धिगत बताती हैं, भगवान् महाबीर को नहीं। सौप से न उरना वालक वर्द्धमान के लिए गोरव की बात हो सकती है, हाथी को वदा में करना राजकुमार वर्द्धमान के लिए प्रशंसनीय कार्य हो सकता है गगवान् महाबीर के लिए नहीं। आधार्यों ने उन्हें प्यास्थान हो देगित किया है। वन विहारी पूर्ण अभय को प्राप्त महाबीर एवं पूर्ण बीनरानी सर्वस्थातंत्र के उद्घोषक तीर्यंक्य मगवान् महाबीर के लिए सौप ने न उरना, हाथी को कार्य में राजी क्या महावीर के लिए सौप ने न उरना, हाथी को कार्य में राजी

क्षेत्र में पर को जीता जाता है स्रोर धर्मक्षेत्र में स्वयं की। युद्धक्षेत्र में पर को मारा जाता है और धर्मक्षेत्र में स्र^{पते} विकारों को।

महावीर की वीरता में दोड़-धूप नहीं, उछलकूद नहीं, मारकाट नहीं, हाहाकार नहीं, ग्रनन्त शान्ति है। उनके व्यक्तिव में वैभव की नहीं, वीतराग-विज्ञान की विराटता है।

एक वात यह भी तो है कि दुघंटनाएँ या तो पाप के उदय से घटती है या पाप-मान के कारण। जिसके जीवन में न पाप का उदय हो न पाप-मान हो, तो फिर दुघंटनाएँ कैंसे घटेगीं, क्यों घटेगीं। अनिष्ट-संयोग पाप के उदय के विना सम्भन नहीं है, तथा वैभन ग्रोर भोगों में उलझान पाप भान के विना असम्भन है। भोग के मानरूप पाप-भान के सद्भाव में घटने वाली घटनाओं में शादी एक ऐसी दुघंटना है, जिसके घट जाने पर दुघंटनाओं का एक, कभी न समाप्त होने वाला सिलसिला आरम्भ हो जाता है। सोभाग्य से महानीय के जीवन में यह दुघंटना न घट सकी '। एक कारण यह भी है कि उनका जीवन घटना प्रधान नहीं है।

लोक कहते हैं कि वचपन में किसके साथ क्या नहीं घटता, किसके घुटने नहीं फूटते, किसके दांत नहीं टूटते ? महावीर के साथ भी निश्चित रूप से यह सब कुछ घटा ही

[े] यह उल्लेख दिगम्बर मान्यता के अनुसार है। खेताम्बर परम्परा महावीर को विवाहित मानती है -- सम्पादक जिनवाणी

को छ पर र लाग पास दिवाडम् १६ व गार समारासाम भौर भाग है हारमां हो दूपसं में वाजना महानीर है गाप घरमाम है। है 'न मह स महता, न वह स वेग' ह यहत प्य चले हो।

भेजसमोनव पर बलन ताल विसमी महाबीय हो समजने हे लिए उनके अलग में जो हना होगा। उनकी वैराप्य देश- हाज की परिस्थितियों के हारण अलात नहीं हुआ था। चनके कारण, उनके अवरंग में विश्वमान थे। चनका विराग परोपजीबी नही था । जो बेराम्य किन्हीं विशिष्ट परिस्थितियीं के कारण उत्पन्न होता है, वह क्षण-जीवी होता है। परिस्थि-तियों के बदलते ही, उसका समाप्त हो जाना सम्भव है।

यदि देश-काल की परिस्थितियाँ महावीर के प्रनुकूल होती तो, क्या वे वैराग्य धारण न करते ? गृहस्थी बसाते, राज करते ? नहीं, कदापि नहीं और परिस्थितियां उनके प्रतिकूल थीं हीं कव ? तीर्थंकर महान् पुण्यशाली महापुरुष होते हैं। अतः परिस्थितियों का प्रतिकूल होना सम्भव नहीं था ।

वैराग्य या विराग, राग के ग्रभाव का नाम है, विद्रोह का नाम नहीं। वे वैरागी राग के ग्रमाव के कारण बने थे, न कि विद्रोह के कारण । महावीर वैरागी राजकुमार थे, न कि विद्रोही । महावीर जैसे ग्रदोही महामान्य में विद्रोह खोज लेना ग्रभूतपूर्व खोज वुद्धि का परिणाम है । वालू में से तेल निकाल लेने जैसा यत्न है।

संघ के प्रकाशन

	मूल्य
१ मोक्षमार्गे ग्रंथ	धप्राप्य
२ भगवती सूत्र माग १	अप्राप्य
३ भगवती सूत्र भाग २	11
र्थ भगवती सूत्र भाग ३	**
५ मगवती सूत्र माग ४	4-00
६ भगवती सूत्रं माग ५	4-00
७ भगवती सुत्र भाग ६	4-00
< भगवती सूत्र भाग ७	9-00
९ उत्तराध्ययन सूत्र	4-00
१० उववाइय सुत्त	2-00
११ जैन स्वाध्यायमाला	ग्रप्राप्य
१२ दशवैकालिक सूत्र	5-70
१३ सिद्धस्तुति	0-64
१४ स्त्री-प्रधान धर्म	अप्राप्य
१५ सुखविपाक सूत्र	0-20
१६ कमं-प्रकृति	0-24
१७ सामायिक सूत्र	0-17
१८ सूयगडांग सूत्र	अप्राप्य
१९ विनयचंद चौवीसी	0-80
२० नन्दी सूत्र	अप्राप्य
२१ आलोचना पंचक	0-70
२२ संसार-तरणिका	अप्राप्य
२३ सम्यक्त्व-विमशं (हिन्दी)	"
२४ जीव-घड़ा	0-20
• • • • • • • • • • • • • • • • • • • •	



.



